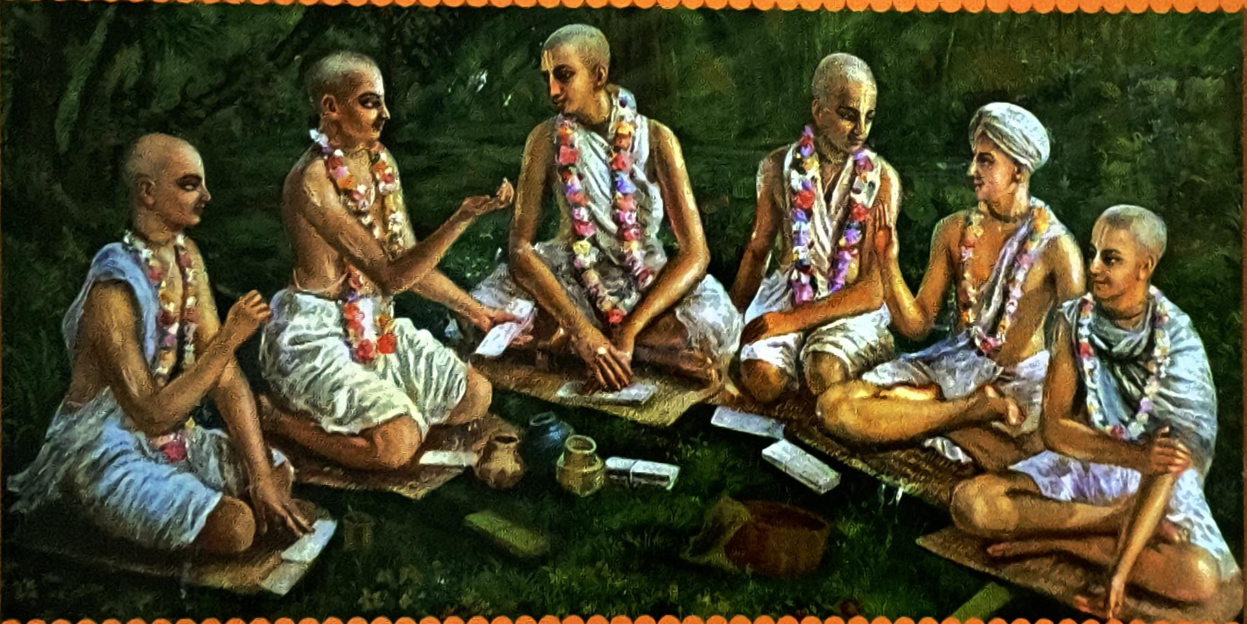
समाम्नायः

(उपासना में उपयुक्त पारिभाषिक शब्दों का तात्पर्य)





डा. अच्युत लाल भट्ट

॥ श्रीहरिः ॥

॥ श्रीराधामदनमोहनौ जयतः ॥

समाम्नायः

(उपासना में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों का तात्पर्य)

प्रस्तुति

श्री श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी परम्परानुवर्ती श्री गदाधरभट्ट गोस्वामी वंशोद्भव
श्रीमन्माध्वगौड़ेश्वर संप्रदाय के वैष्णवाचार्य

गोस्वामी (डॉ.) अच्युत लाल भट्ट

एम.ए. (संस्कृत-हिन्दी), पी-एच.डी., भागवत-भूषण श्रीमद्भागवत के परम्परासिद्ध
प्रवचनकार एवं प्रमुख शिक्षाविद्

समाम्नाय: (Samamnayah)

ISBN: 978-81-972896-9-9

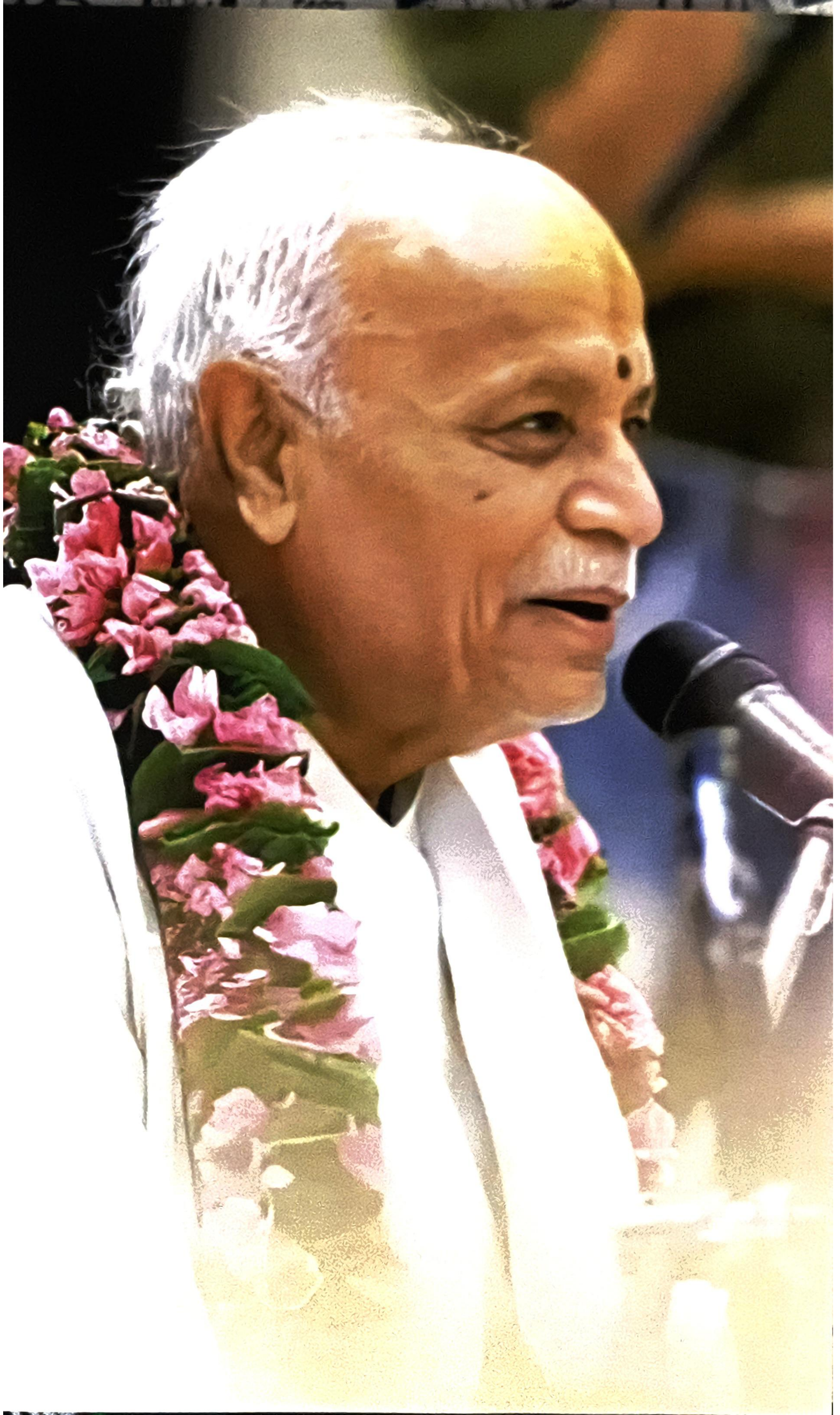
प्रकाशन तिथि : आश्विन मास, कृष्ण पक्ष, दशमी, विक्रम संवत २०८१, २७ सितंबर २०२४

न्योछावर : 300/- रुपए

प्राप्ति स्थान : 253, सेक्टर-4, चैतन्य विहार फेज़-II, श्रीधाम वृन्दावन-281121 (उ.प्र.)
दूरध्वनि : 9412485678, 9837346444

Printed & Published by :

GK Print Pack Exhibition LLP
Vill. - Narna Purba Para, P.O. - Narna,
P.S. - Domjur, Dist. - Howrah, Pin - 711 405
Contact : 91633 36388
Email : info@gkprintpack.in







गुरू महाराज के आविर्भाव की
80वी वर्षगांठ के पुनीत अवसर पर
उन्हीं के द्वारा एकत्रित एवं संकलित

समाम्नायः

(उपासना में उपयुक्त पारिभाषिक शब्दों का तात्पर्य)

जो भक्त समाज के
कल्यानार्थ संग्रहित किया गया
आज उन्हीं के चरण कमल में
सादर समर्पित करते हुए....

उनका अपना राधारमण परिवार
(कोलकाता एवं वृंदावन)



॥ राधारमणो जयति जय गौर ॥

डॉ. अच्युत लाल भट्ट

जन्म : आश्विन कृष्ण 10 संवत् 2001 (11.09.1944), श्रीधाम वृन्दावन

वंश : श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी परम्परानुवर्ती श्रीगदाधर भट्ट गोस्वामी

पिता : गोस्वामी श्रीनित्यानन्दजी भट्ट, भागवत भूषण

माता : भक्तिमती श्रीकृष्णा देवी गोस्वामिनी

शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी एवं संस्कृत), पी-एच. डी., साहित्यशास्त्री, साहित्यरत्न

अध्यापन : श्रीरंगलक्ष्मी संस्कृत महाविद्यालय, वृन्दावन (1965-69) चम्पा अग्रवाल इण्टर कॉलेज, मथुरा (1969-2003)

ग्रन्थ लेखन : श्रीरूपगोस्वामी और उनका काव्य साहित्य

संदर्भसार (श्रीजीव गोस्वामीकृत षट्संदर्भ का अनुवाद संक्षेप)

श्रीगोविन्दलीलामृत चषक (भूमिका एवं सम्पादन)

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु की दुर्गमसंगमनी एवं भक्तिसारदर्शिनी टीकाओं का अनुव
श्रीमद्भागवत महापुराण सानुवाद टीकात्रय अष्टछाप सागर (भूमिका एवं सम्पादन)

लीलाविलास माधुरी (श्रीरूपरसिक गोविन्दकृत)

तैत्तरीय नित्यकर्म पद्धति 'अर्चन',

विभिन्न पत्रिकाओं में शोधपूर्ण अनेक लेख,

पूज्य पिताश्री द्वारा लिखित साहित्य का सम्पादन

रुचि : अध्ययन, लेखन, भगवत् सेवा-श्रृंगार

अन्य : श्रीमद्भागवत के परम्परासिद्ध लब्धकीर्ति व्याख्याता

देशभर में अनेक प्रवचन मालाओं में शोधपत्र पाठन सेमीनार, उत्सव एवं विद्वत् समारोहों में सारगर्भित प्रवचन भारतीय एवं विदेशी छात्रों को शोधकार्य में दिशा निर्देशन।

पता : सी-253, सेक्टर-4, चैतन्यविहार फेस-2, श्रीधाम वृन्दावन-281121
Email: sarita.kumudesh@gmail.com Mob. 9412485678, 9837346444

अनुक्रम

प्रमाण

समाम्नाय लक्षण

निगम सूत्र

आगम संदर्भ

श्रुति परोक्षवाद

स्मृति निग्रहानुयोग

शास्त्र

उपनिषद्

वेदांत/ वैदिक

इतिहास पुराण आख्यान उपाख्यान कथा मीमांसा तर्क प्रणव

अनुबंध

प्रामाणिक वाद लक्षण सूत्र संदर्भ परोक्षवाद निग्रहानुयोग

समाम्नाय -(सम्+आ+म्ना+धञ्)

सम्यक् अभ्यास २ सम्यक् पाठ ३ वेद ४ स्मृति वचन

गुरू मुख से सुने हुए वेद एवं स्मृतियों का सम्यक् पाठ यज्ञ क्रिया (भगवत भजन) में अनुपयोगी अर्थों का निवारण करना

आम्नायस्य क्रियार्थत्वात् अनार्थस्यम् अतदर्थानाम् (जैमिनी)

आम्नायवचनं सत्यं इत्ययं लोकि संग्रहः

आम्नायेभ्यः पुनवेदाः प्रसृता सर्वतोमुखाः॥

(वेद के वचन सत्य हैं, इसलिए यह शब्दकोश संग्रह विभाग है। यहां वैदिक शब्दों द्वारा वेदों का अर्थ सर्वत्र प्रकाशित होता है।)

निगम - (निगम्यतेऽत्र अनेन वा) नि+गम्+घञ्

सभी पुरुषार्थों (फलों) की उत्पत्ति भूमि परतत्त्व एवं इसकी शीर्षफलक वर्णन करने वाला एवं वहां पहुंचाने वाला शास्त्र ('निगम') कहलाता है। (बैकुंठ तक गमन कराने वाला शास्त्र निगम है।)

आगम-आ+गम्+घञ्-आगम के प्रमुख तीन अर्थ हैं

१. लक्ष्य प्राप्ति का प्रामाणिक साधन।

सिद्धं सिद्धैः प्रमाणैः तु हितं वात्र परत्र वा

आगमः शास्त्रं आप्तानाम् आप्ता तत्त्वार्थवेदिनः॥

(अर्थात् सिद्धप्रमाणों द्वारा जो मार्ग सिद्ध हो; जो इस लोक एवं परलोक में हितकारी हो; ऐसे यथार्थ वक्ताओं के मार्ग को आगम कहते हैं, जो 'तत्त्वार्थ' के जानकार हैं उन्हें 'आप्त' कहते हैं।)

२. व्यवहार में आमदनी या प्रतिफल को 'आगम' कहते हैं। आगम की अपेक्षा 'भोग' की प्रमुखता मानी गई है। 'आगमो निष्फलः तत्र भुक्तिः स्तोकापि यत्र नो' (वह आमदनी निष्फल है जिसका थोड़ा भी भोग नहीं किया जा सके)

"आगामापायिनो अनित्याः तान् तितिक्षस्व भारत" -गीता २.१४ (लाभ एवं हानि दोनों ही अनित्य है। हे अर्जुन ! तुम उन्हें सहन करो)

३. परतत्त्व को प्राप्त करने के साधनों का वर्णन करने वाले शास्त्र को आगम कहते हैं।

श्रुति वेद-(श्रु+क्तिन्)

जिसे समाधि में देखा गया हो अर्थात् जो ऋषियों द्वारा साक्षात् सुनी गई हो।(ऋषियो यत्र द्रष्टारः)

स्मृति-

श्रुति के अर्थ का स्वयं या किसी अन्य ऋषि के द्वारा किया गया व्याख्यान। जिसका स्मरण के द्वारा पुनः प्रस्तुतीकरण हो।

शास्त्र-

शंसनात् शासनात् चैवं शास्त्रमित्यमिधीयते
शासनं द्विविधं प्रोक्तं निषेध-विधि-रूपकम्
शासनं भूत वस्त्वैक विषयों न क्रियापरम्।

शंसन (निरूपण) करने वाला दर्शनशास्त्र है जो जड़ चेतन नियामक का वस्तु परक विचारात्मक वर्णन करता है। शासन करने वाला धर्मशास्त्र है जो क्रियापरक, पुरुषपरक एवं आदेशात्मक होता है।

उपनिषद्

उपनीय तमात्मानं ब्रह्मोऽ पास्तद्वयं यत:
भिनत्ति अविद्यां तज्जंच तस्मात् उपनिषदं विदु:॥

जो ज्ञान सर्वव्यापक ब्रह्म को निकट दर्शन करता हो, जिससे द्वैतभाव शांत हो जाता हो, जो अविद्या एवं उससे उत्पन्न संसार का नष्ट करे इसलिए ऐसे ज्ञान को उपनिषद् कहते हैं। सद् धातु क्रिया के तीन अर्थ हैं–

•सद्= निविशने (गुरु के पास बैठकर ज्ञान प्राप्त करना)

•सद्= ज्ञान

•सद्= विनाश के (संशय वैपरीत्य असंभव का नाश कर यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करना)

वेदांत एवं वैदिक

अभिन्न-निमित्तोपादान रूप में ईश्वर की 'जगत्-कारण' रूप में सिद्धि 'वेदांत' है।

भिन्न निमित्तोपादान रूप में ईश्वर को जगत् का कारण जानना 'वैदिक' तो है 'वेदांत' नहीं, इसलिए वैष्णवगण शक्ति शक्तिमान में अभेद मानते हुए 'शक्ति -परिणाम वाद' द्वारा ईश्वर को ही अभिन्न निमित्तोपादान मानते हैं। वह वेदांती ही हैं।)

इतिहास–

इति ह आस (पहले ऐसा था)

धर्मार्थ काम मोक्षाणाम् उपदेश समन्वितम् पूर्व वृत्त कथायुक्तं इतिहासं प्रचक्षृते॥

(धर्म अर्थ काम एवं मोक्ष प्राप्ति के साधनों का उपदेश पूर्वक, प्राचीन घटनाओं एवं विवरणों को प्रस्तुत करना 'इतिहास' कहलाता है।)

पुराण

{पुरा अणति (पूर्व काल में श्वास लेता था) (पुरा+अण्)}

पूरणात् पुराणं

(वेद के अर्थों को पूर्ण करने वाला ग्रंथ पुराण है।)

आख्यान

स्वयं दृष्टार्थ कथनो आहुः आख्यानकं बुधाः॥

(विद्वानों ने उस कथन को आख्यान कहा जिसे उन्होंने स्वयं देखा था।)

उपाख्यान

श्रुतस्यार्थस्य कथनों उपाख्यानं प्रचक्षृते॥

(जिस घटना को स्वयं ने तो नहीं देखा परंतु प्रमाणि व्यक्तियों से सुना उसे उपाख्यान कहते हैं।)

कथा

'प्रबंधकल्पना कथा'

(किसी घटना की कल्पना कर उसका कथन कथा है।)

मीमांसा

वेद का आधार लेकर किया गया सप्रमाण विचार।

तर्क

बुद्धि का आधार लेकर किया गया विचार।

प्रणव

यह परब्रह्म की संज्ञा एवं महावाक्य है।

अकारेणोच्येत विष्णु:श्री उकारेण कथ्यते मकारस्तुतयो: दास:
पंचविश: प्रकीर्तित:

(भक्तिविवेक: नायक, वंशीधरी टीका 12.11.10)

अकार से विष्णु, उकार से श्री:, मकार से दास जीव एवं नाद बिंदु से 25 तत्त्वात्मक व्यक्त प्रकृति का कथन किया जाता है। संपूर्ण शास्त्र में व्याप्त होने वाला यह वाक्य 'महावाक्य' है।

प्रमाण (प्रमा करणम् प्रमाणम्)

(यथार्थ ज्ञान (प्रमा) को प्राप्त कराने का साधन 'प्रमाण' कहलाता है। विभिन्न दर्शनों में प्रमाणों की संख्या इस प्रकार मानी गई है।)

1.चार्वाक् –प्रत्यक्ष (इंद्रियार्थ सन्निकर्ष: प्रत्यक्षं)

2.जैन /वैशेषिक– प्रत्यक्ष +अनुमान (लिंग परामर्श: अनुमानं)

3.सांख्य योग –प्रत्यक्ष +अनुमान+ शब्द(आप्त वचनं शब्द:)

4. न्याय– प्रत्यक्ष+ अनुमान+ शब्द + उपमान(उपमितिकरणं)

5.प्राभाकर(मीमांसक)– प्रत्यक्ष+अनुमान+ शब्द+ उपमान +अर्थापत्ति (कार्यान्यथा उपपत्तौ तदुपपादकीभूत अर्थान्तर कल्पनम्)

6. भाट्ट मीमांसक एवं वेदान्त–अनुपलब्धि (अभाव)

7. पौराणिक –उक्त+ऐतिह्य+सम्भव

अनुबंध

वेदांत– वेद, उपनिषद् (ब्रह्म सूत्र), गीता..... ये तीन मुख्य प्रमाण है।

श्री वल्लभाचार्य आदि वैष्णवाचार्य–वेद+उपनिषद्+

गीता+श्रीभागवत्

1. वेदा

2. श्री कृष्ण वाक्यानि

3. ब्रह्मसूत्राणि चैव हि

4.समाधिभाषा व्यासस्य (श्रीमद् भागवत) प्रमाणं तच्चतुष्टयम्॥

प्रमाण्यवाद

वेदों का प्रमाण्य; अन्य का प्रमाण्य

1. न्याय–परत:(बुद्धि प्रयोग)प्रामाणिक एवं परत:(बुद्धि की व्याख्या से)अप्रामाण्य भी।

2. सांख्य–स्वत:प्रामाण्य, एवं स्वत: ही अप्रामाण्य भी।

3. मीमांसा/ वेदांत–स्वत:प्रमाण्य /परत:अप्रामाण्य

4. बौद्ध–परत: प्रामाण्य परत: अप्रामाण्य

5. जैन –उत्पत्ति में परत: प्रामाण्य उत्पत्ति में परत:अप्रामाण्य ज्ञप्ति में स्वत: प्रामाण्य ज्ञप्ति में स्वत: अप्रामाण्य

तात्पर्य निर्णय में प्रधानता

श्रुति –लिंग –वाक्य –प्रकरण– स्थान– समाख्या (तात्पर्य) संमवाय पार दौर्वल्यं अर्थ विप्रकर्षात्–(न्याय:)

श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान एवं व्याख्या में पर-पर की वस्तुएं दुर्बल साधन मानी गयी है। क्योंकि वे तात्पर्यार्थ से दूरी बनाए हुए हैं।

लक्षण

असाधारण धर्म वचनम्–

अतिव्याप्ति आप्ति असंभव और वैपरीत्य रहित वचनों को 'लक्षण' कहते हैं।

सूत्र

स्वल्पाक्षरं असंदिग्धं सारवत् विश्वतो मुखं
अस्तोभं अनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

अस्तोभं=विचारादि को अवरुद्ध नहीं करना। तिरस्कार नहीं करना।

(अल्प अक्षरों में संदेह रहित, सारयुक्त सर्वसमाधान करने वाले विचारों के अवरुद्ध न करने वाले निर्दोष वचन को सूत्रवेत्ता 'सूत्र' कहते हैं।)

संदर्भ

वेद्यत्वं रसवत्तं च छन्दोऽलंकारमाधुरी
गाम्भीर्यं अर्थलालित्यं संदर्भ परिकीर्तितः
गूढार्थस्य प्रकाशश्च सारोक्तिः श्रेष्ठता तथा
नानार्थवत्वं वेद्यत्वं संदर्भः कथ्यते बुधैः।

तत्व संदर्भ (जीव)

(अर्थात् जिस व्याख्या में ग्रंथ के प्रतिपाद्य मुख्य विषय, उसकी रसवत्ता, छंद –अलंकार की माधुरी, अर्थ-गंभीरता, लालित्य का प्रकाशन हो उसे संदर्भ कहा

जाता है। गूढ-अर्थ के प्रकाशन, निष्कर्ष-कथन, श्रेष्ठता, प्रकाशमान अनेकों अर्थ एवं प्रतिपाद्य पदार्थ का कथन करना 'संदर्भ' कहा जाता है।)

परोक्षवाद

अन्यथा स्थितोऽर्थः संगोपयितुं अन्यथा कृत्वा उच्यते स परोक्षवादः ॥

वाक्य का अर्थ भिन्न हो परंतु उसे छिपाकर अन्य रूप में प्रस्तुत किया जाए उसे परोक्षवाद कहते हैं।

निग्रहानुयोग

स्वमतात् प्रच्यावनं निग्रहः। तस्य मतस्य आविष्करणं अनुयोगः।

पहले तो विपक्षी को अपने मत से डिगा देना फिर उसके मत का खंडन करने के लिए उसके मत को पूर्व पक्ष में रखना, 'निग्रहानुयोग' कहलाता है।

तत्त्व-विमर्श

तत्त्व पांच हैं— ब्रह्म, जीव, माया (जगत्), काल, कर्म

तत्त्व की परिभाषा

स्वयंप्रकाश

शक्ति की परिभाषा

विशुद्ध सत्त्व

ब्रह्म की सशक्तिकता

शक्ति शक्तिमान् में अभेद

अचिंत्य भेदाभेद की चतुश्लोकी

शक्ति-परिणामवाद

अविकृत-परिणाम

भेद-अभेद

विशेष

अचिंत्य भेदाभेद

तत्त्व

"सजातीय विजातीय स्वगत भेद-रहित ज्ञान एव परं तत्त्वम्"(सर्व संवादिनी –जीव गोस्वामी–भागवत संदर्भ–(प्रक:4)

वदन्ति तत्वविदः तत्वं यद्ज्ञानम् अद्वयम्

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते॥

(श्रीमद्भागवत–1.2. 11)

अद्वयं=सजातीय भेद शून्यता (आम्रो न पासः)
विजातीय भेद शून्यता (आम्रः न पाषाणः)
स्वगत भेद शून्यता (आम्रपुष्पादि न आम्रः)
–प्रमेय रत्नावली– बलदेव विद्या भूषण – 1-7

वैष्णवगण ब्रह्म में स्वगतभेद स्वीकार करते हैं। इससे ब्रह्म की 'अद्वयता' बाधित नहीं होती। ब्रह्म में अस्ति, भाती, प्रियं उसके स्वरूप वैभव (स्वरूप शक्ति) है। रूप एवं नाम बहिरंगा शक्ति जगत् के स्वरूप हैं।

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पंचकम्
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगत् रूपं ततो स्वयं ॥

(वेदांत परिभाषा)

'नीलं कमलं'की तरह ब्रह्म में संयोग संबंध का अभाव है। ब्रह्म में कूटस्थस्थिति में भी अस्ति भाति प्रिय ये तीन गुण बने रहते हैं।

सत् चित् आनंद का अर्थ

असत् अज्ञान दुःख प्रतियोगित मानना उचित नहीं है। स्वरूपगत होने से नित्यता ज्ञान अनंतता आदि ब्रह्म के स्वरूप भूत धर्म सिद्ध होते है। निषेध सर्वदा सावधि होता है। अनाम, अरूप, अनीह निर्गुण आदि का अर्थ ब्रह्म में प्राकृत गुणों का अभाव है; गुण आदि की ही हीनता नहीं। 'तत्त्व' ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान से निरपेक्ष पदार्थ है। वह ज्ञान रूप होते हुए भी स्वयं का ज्ञाता भी है। सामान्यतः ज्ञाता 'प्रत्यक्' एवं ज्ञेय पराक् होता है। परंतु भगवत् तत्त्व में देह देही विभाग नहीं है। ज्ञान रूप में वही ज्ञान अपना ज्ञाता भी है। अतः निर्गुण एवं सगुण दोनों ही तत्त्व है।

स्वयं प्रकाश

प्रतियोगी अपेक्षा अभाव मात्रैक स्वतः प्रकाशः

श्रीधरी –11.22.31

वस्तु से भिन्न सजातीय–विजातीय वस्तु की अपेक्षा बिना भी जो स्वयं को प्रकाशित करें। जैसे सूर्य को प्रकाशित करने के लिए किसी दूसरे सूर्य अथवा प्रकाशित वस्तु की अपेक्षा नहीं होती है।

शक्ति

शक्तिः नाम कार्यान्यथानुपपत्ति सिद्धौर वस्तुना धर्म-विशेषः

साधु सर्वस्मिम् उपादाने निमित्तसे च कारणे स्वरूपभूतैव मन्तव्या ॥

–सर्व संवादिनी (भागवत संदर्भ) प्रक–5

किसी पदार्थ (वस्तु) का ऐसा धर्य शक्ति कहलाता है, जिसके बिना उस वस्तु के संपादित होने वाला कार्य नहीं किया जा सके। यह शक्ति सभी उपादान या निमित्त कारणों में स्वरूपगता होकर रहती है।

कारणस्य आत्मभूता शक्तिः। शक्तेः च आत्मभूता कार्यम्

सर्व संवादिनी (भागवत संदर्भ) –प्रक–6

शक्ति सर्वदा कारण की स्वरूपभूता होती है। एवं कार्य शक्ति के ही आधीन होता है। (जैसे अग्नि का ताप)

विशुद्ध सत्व /चिच्छक्तिः

मायातः परा भगवतः स्वरूप शक्तिः।

तस्य वृत्तित्वेन चित् रूपं 'शुद्धसत्वारत्वं सत्वम् इति।

(क्रम संदर्भ 2.9.10)

त्रिगुणात्मक माया से परे भगवान की स्वरूप शक्ति जो वृत्ति में ह्लादिनी सवित् एवं संधिनी स्वरूपा है। शक्ति के प्राकट्य एवं अप्राकट्य के तारतम्य से अंशी एवं अंशत्व की ख्याति है।

शक्ति समाप्ति पुर्य्यादि दाहे दीपाग्नि पुजयो:

शीताद्यार्ति क्षये अग्नि पुंजात् एवं सुखों भवेत् ॥

–लघु भागवतामृतम् (श्री रूप)

(यद्यपि एक दीपक एवं अग्नि पुंज में किसी घर/ ग्राम को जलाने में समान शक्ति है तथापि शीत की निवृत्ति तो अग्निपुंज से ही होती है।)

ब्रह्म सशक्तिक (शक्तियों से युक्त) है–

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समः चाभ्यधिकश्च दृश्यते।

परास्य शक्तिः विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

(श्वेता.उप.6.8)

उस ब्रह्म का जगत् रचना में कोई साक्षात् निज प्रयोजन (कार्यं) नहीं है। उसकी इंद्रियां हस्त पादादि (करणं) भी प्राकृत नहीं है। वह अचिंत्य रूप में सर्वत्र विद्यमान है (विद्यते)।उसकी पराशक्ति (स्वरूप शक्ति) के तीन रूप हैं –ज्ञान शक्ति (सवित्) बल शक्ति (संधिनी) क्रियाशक्ति (आह्लादिनी) है।

इनके अतिरिक्त गीता जी में माया एवं तटस्था दो शक्ति भी है।

1–माया शक्ति (अपरा) है। यह बहिरंगा शक्ति है (गीता 7.4) 2–जीव शक्ति (परा) यह तटस्था शक्ति है (गीता 7.5)

शक्ति का आश्रय शक्तिमान् ही है।

सर्वेषां अपि वस्तूनां भावार्थों भवति स्थितिः

सत्यायित भगवान् कृष्णः किम् अतत् वस्तु रूप्यताम् ॥

–श्री शुकः राजनं (10.14.57)

सभी वस्तुओं की स्थिति अपने परमार्थ रूप कारण में (भावार्थो) होती है। उस कारण की भी स्थिति परमकारण भगवान् से ही है। फिर कौन सी वस्तु कृष्ण से भिन्न (अतत्) हो सकती है यह बताओ?

शक्ति शक्तिमान में अभेद-

तद्अनन्यत्वं आरम्भण शब्दादिभ्यः॥

(ब्.स्.2.1.14)

(आरंभण शब्द आदि हेतुओं से मिट्टी/ ब्रह्म से कार्यो(शाराब, घट /जगत्)आदि विकारों की अनन्यता सिद्ध होती है।)

बृहदुपलब्धमेतद् अवयन्ति अवशेषतया
यत उदयास्तभयौ विकृते मृदि वाविकृतात्
अतः ऋषियो दधुः त्वयि मनोवचनां चरितम्
कथमयथा भवन्ति भुवि दत्त पदानि नृणाम्॥

–10.87.15

तत्त्व की शक्तियां

एकम् एव तत् परमतत्वं स्वाभाविक –अचिंत्यशक्त्या सर्वदैव स्वरूपं(श्री कृष्ण), तद्रूप वैभव (ब्रह्म परमात्मा भगवान) जीव (तटस्था शक्ति) प्रधान (जगत् उपादान)–रूपेण चतुर्धा– अवतष्ठेत। सूर्य (श्री कृष्ण); अन्तर्मण्डलस्थ तेज (ब्रह्म परमात्मा भगवान्) इव;तद्बहिर्गत रश्मि (जीव);तत् प्रतिच्छवि रूपेण (परमात्मा की दूरगत प्रति फल रूपाप्रधानया= प्रकृति) दुर्घट घटकेत्वं हि अचिंत्यत्वम्–(भगवत संदर्भ 16 वां प्रकरण) वैष्णव तोषिणी –10.14.28

(एक ही तत्व (श्रीकृष्ण) अपनी स्वाभाविक अचिंत्य शक्ति से सर्वदा स्वरूप (श्रीकृष्ण) तद्रूप वैभव (ब्रह्म परमात्मा भगवान), जीव (तटस्था शक्ति), प्रधान (जगत् उपादान) रूप से चार स्वरूपों को में विराजमान है। जैसे सूर्य (श्रीकृष्ण), उनका अन्तर्मण्डल (ब्रह्म परमात्मा भगवान) सूर्य के बहिर्मण्डल गत रश्मि (जीव) एवं सूर्य की प्रतिछवि (अंधकार= प्रकृति)। ब्रह्म ही इन चार प्रकार से प्रकट होता है। अचिन्त्य का अर्थ है दुर्घट घटना।)

अचिन्त्य भेदाभेद स्थापक चतुः श्लोकी

(१) अचित् जड़ (माया) के तीन भेद हैं-प्रधान, अविद्या, योगमाया

"कार्यं प्राधानिकं सत्यं, कार्यम् आविद्यकं मृषा
नित्यं तद् भक्तिसम्बन्ध इदं तत् त्रितयात्मकम् ॥ 1 ॥"

('प्रधान' का कार्य जगत् सत्य तो है, परन्तु विकारी है। अविद्या की दो वृत्तियां है आवरण एवं विक्षेप। उनके द्वारा हुआ जीव का देहाध्यास मिथ्या है। योगमाया चित्शक्ति का कार्य वैकुण्ठ सत्य है।)

(२) अचित् देह के द्वारा तीन कार्यों का सम्पादन होता है-

१-प्रधान से देह -दैहिकों का निर्माण,
२-जीव माया (अविद्या द्वारा देह में अहंता बुद्धि (अध्यास)
३-भक्ति संबंध होने पर निर्गुण देह की प्राप्ति।

"प्राधानिकाः स्युः देहाः तत् धर्मोवा, आविद्यकं पुनः:
जीवेषु तत् तत् सम्बन्धः, भक्तिः चेत् निर्गुणाश्च ते ॥ 2 ॥"

(३) श्री कृष्ण की तीन शक्तियां है-[तटस्थता, बहिरंगा, स्वरूप(चित्) शक्ति]

"चित् जीव माया नित्याः स्युः तिस्रः कृष्णस्य शक्तिः
तद् वृत्तयः च ताभिः सः भांति एकः परमेश्वरः ॥ 3 ॥"

चित् शक्तिः (ह्लादिनी संवित् संधिनी), तटस्था (जीव शक्ति) एवं माया (प्रधान एवं अज्ञान) तीनों नित्य शक्तियां हैं जिनकी अनेक वृत्तियां हैं। उनसे परमेश्वर सुशोभित है।

(४) अचिंत्य रूप में शक्ति शक्तिमान् में भेदाभेद है।

कार्य कारणयोः ऐक्यात् शक्ति- शक्तिमतोः अपि
एकमेवा द्वितीयं ब्रह्म, नेह नानास्ति किंचन ॥ 4 ॥

कार्यकारण में ऐक्य है। इसी प्रकार शक्ति शक्तिमान् में भी ऐक्य है। अतः 'एकमेवा द्वितीयं ब्रह्म' जैसे वाक्य सत्य ही सिद्ध होते हैं। शक्ति न तो स्वतंत्र मूल तत्त्व है न वंध्यापुत्र के समान असत् है। वह 'भाव' पदार्थ है जो शक्तिमान् के अधीन रहता है।

शक्ति परिणाम बाद

प्रकृतिः हि अस्य उपादानं आधारः पुरुषः परः
सतोऽभिव्यंजको कालः ब्रह्म तत् त्रितयं तु अहम् ॥

–11.24.19

कार्य अवस्था में प्रतीयमान (सतः) इस जगत् का उपादान कारण 'स्वरूप' भगवान् न होकर उनकी त्रिगुणात्मिका प्रकृति है। (परन्तु शक्ति के कार्य शक्तिमान के ही कार्य कहलाते हैं, अतः ईश्वर को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कह दिया जाता है) शक्ति एवं उसके कार्यों का आश्रय पुरुष ही है। जगत् को अभिव्यक्त करने वाला काल है। उपादान, आश्रय एवं प्रकाश तीनों मै (ब्रह्म) ही हूं उपचारेण शक्ति के कार्य शक्तिमान् के कार्य माने जाते हैं। जैसे भवन निर्माण तो मजदूर करता है एवं निर्माता राजा माना जाता है। (10.3.19)

अविकृत परिणाम

मणि–मन्त्र–योगी–कामधेनु–कल्पवृक्षेभ्यः वहवः पदार्थाः जायन्ते तथापि न हिते विकृताः भवन्ति।

सारार्थ दर्शिनी - 11.3.38

प्रत्यक्षतःभगवत् शक्ति प्रकृतिः ही जगत् का उपादान कारण है। शक्ति शक्तिमान की अभेद से भगवान् को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कह दिया गया। जगत् विकारयुक्त होने पर भी भगवान् विकार मुक्त ही रहते हैं। माया भगवत् शक्ति तो है, परंतु स्वरूप शक्ति नहीं।

भगवत् स्वरूप मायातीत ही है।

प्रकृतिः हयस्योपादानं...।

प्रकृतेः जगदुपादानत्वादेव मम जगदुः पादानत्वं।
किन्तु तस्य विकारत्वेऽपि न मे विकारित्वम्।
तस्याःमत् शक्तित्वेऽपि मत् स्वरूप शक्तित्व-अभावात् ॥

सारार्थ दर्शिनी–11.24.19

भेदाभेद

•हमारा संपूर्ण ज्ञान द्वैत आधारित ही है। जहां द्वैत है वहां अद्वैत कैसे होगा? ऐसा मानने पर स्ववाचोविरुद्धता का दोष आ जाएगा।

•द्वैत का अस्तित्व ही तब बनेगा जब अन्योन्यभेद युक्त दो स्वतंत्र- पदार्थ हो। परन्तु ऐसा श्रुति सम्मत नहीं है। श्रुतियां तो "एकमेवा द्वितीयं ब्रह्म" की स्थापना करती हैं।

•एक आश्रय तत्त्व में भी अनुवाद (subject) एवं विधेय (predicate) "अर्थात् कर्ता एवं कर्म का प्रयोग संभव है-" जैसे (यह दीवाल गिरना चाहती है) अथवा -'सत्ता सती', 'कालः सर्वदा' 'भेदो भिन्नः'। आश्रय तत्त्व में भेद नहीं है। 'विशेष' गत भेद है।

आसीत् ज्ञानम् अथो ह्यर्थ एकमेवा विकल्पितम्।
यदा विवेक निपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे॥

–11.24.2

(प्रलय काल में (अयुगे) ब्रह्म-परमात्मा (ज्ञान) तत्त्व एक ही था। संपूर्ण रूप में (अथ-कार्त्स्नेन) एक (अविकल्पितं) ही था अपनी अचिन्त्य शक्ति से वह अनेक हुआ।)

ब्रह्म (भगवान्) में कुछ भेद स्वरूप शक्ति द्वारा प्रकट होते हैं एवं कुछ भेद बहिरंगा या तटस्थता (माया/जीव) द्वारा दर्शित हो जाते हैं।

स्वरूप शक्ति के गुण (सुहृत्, प्रिय, साम्य, असंग आदि है, जो मायिक नहीं है (अगुण) ही है-

मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम्।
सुहृदं प्रियं आत्मानं साम्य असंगादयोऽगुणाः॥

–(11.13.40)

विशेष

•भेद प्रतिनिधि: न भेद:।

•भेदाभावेऽपि भेद कार्यस्य हेतु:

–गीताभूषणभाष्य बल्देव विधाभूषण

अर्थात् वस्तु में स्थित वस्तु का ऐसा धर्म जो वस्तु से अलग न होकर भी 'भेद' रूपी कार्य का हेतु हो अर्थात् एक ही वस्तु धर्मी भी बन जाए एवं धर्म के रूप में भी प्रतीत हो। उसे विशेष कहते हैं जैसे सत्तासती, भेदो भिन्नः कालः सर्वदा।

* 'विशेष' के अभाव में किसी भी वस्तु का धर्मी या धर्म रूप में वर्णन नहीं किया जा सकता है। "जलं शीतलं"। यह प्रतीति विशेष के कारण ही है।

* अनेक वस्तुओं में भेद की प्राप्ति एवं सिद्धि भी विशेष से ही होती है। जैसे "जल शीतल है अग्नि उष्ण है"। अतः निर्विशेष अद्वैतवादियों को भी न चाहते हुए भी ईश्वर में विशेष स्वीकार करना पड़ता है।

सभी भेदों का कारण 'विशेष' नामक तत्त्व ही है।

चरम:सद् विशेषाणाम् अनेक: असंयुत: सदा

परमाणु: स विज्ञेय: नृणाम् ऐक्य भ्रमो यत:॥

–मैत्रेय:विदुरं 3.11.1

किसी भी कार्य रूप पदार्थ के (सतः) अशों का (विशेषाणां) ऐसा चरम भाग जिसका विखंडन न हो सके (चरम:) उसे 'परमाणु' कहते हैं। परमाणु अनेक होते हैं वह मिलकर 'कार्य-अवस्था' प्राप्त करते हैं। जब कार्य अवस्था नहीं होती तब भी असमुदाय अवस्था में पृथक् पृथक् भी रह सकते हैं (असंयुत:)। वे नित्य कोटि के पदार्थ हैं (सदा)। जब वह समुदय अवस्था को प्राप्त होते हैं तब व्यवहार करने वाले व्यक्ति को (नृणां) किसी अवयवी पदार्थ में ऐक्य का भ्रम होता है। अर्थात् अवयवी बुद्धि होती है। जैसे पृथ्वी के अनेकों परमाणुओं के समुदय को 'घर' कह दिया गया। दो परमाणुओं में भेद करने वाला तत्त्व ही 'विशेष' है।

"अवयवी निराकारकेन कार्यानुपपत्या 'विशेष:' कल्पते"

२) परमाणु में 'विशेष'नामक तत्त्व रहता है जो परमाणु को परमाणु से अलग करता है। इस विशेष के बिना अवयवी में अर्थ क्रियाकारकता नहीं आएगी। अतः विशेष सिद्ध होता है। वैज्ञानिक हिंग्स बोसान ने 'विशेष' की इस शक्ति के ही 'God partical' के रूप में संकेतित किया है।

अचिंत भेदाभेद

तस्मात् स्वरूप–अभिन्नत्वेन चिन्तयितुं अशक्यत्वात् भेदः।

भिन्नत्वेन चिन्तयितुम् अशक्यत्वात् अभेदश्च प्रतियते॥

इति शक्ति शक्तिमतोः भेदाभेदौ अंगीकृतौ तौ च अचिन्त्यौ॥।

सर्वसंवादिनी(भगवत् संदर्भ)–प्रकरण-24

अतः स्वरूप से शक्ति को अभिन्न भी नहीं माना जा सकता (क्योंकि गंध कस्तूरी से एवं ताप अग्नि से पृथक् भी दिखता है), अतः भेद है उन्हें सर्वथा भिन्न भी नहीं माना जा सकता है, अतः अभेद भी है। इस प्रकार शक्ति- शक्तिमान् का भेदाभेद स्वीकार करना होगा। वह अचिन्त्य ही है। (अचिन्त्य का मुख्य अर्थ शास्त्रैक वेद्यता है)

शास्त्र सात प्रकार से शक्ति- शक्तिमान की अचिन्त्यता का प्रतिपादन करते हैं- (शास्त्र योनित्वात् (ब्र.सू.1.1.3)) शास्त्र द्वारा ही परत्त्व को जाना जा सकता है। अथवा जगत् का कारण वह ही है-यह शास्त्र का कथन है। श्रुतेः तु शब्दमूलत्वात् ब्र.सू.2.1.27

1-तर्काऽप्रतिष्ठानात् 2.1.11(ब्रह्म तर्क द्वारा अगोचर है)

2- अविकृत परिणाम-जैसे कल्पवृक्ष, चिन्तामणि, मंत्र या स्वयं तो विकृत नहीं होते परन्तु अन्य अभीप्सित वस्तु को प्रकट कर देते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म जगत् जीव को प्रसव कर देता है। (11.3.38)

3- अभिन्न निमित्तोपादानः- (ऊर्णनाभिः सृजते गृह्यते च तथा अक्षरात् भवतीह विश्वम्-मुण्डक 1.1.7)

4- विरुद्ध धर्मश्रियता- जैसे परस्पर विरोधी जलचर जीवों का समुद्र से कोई विरोध नहीं होता, इसी प्रकार शक्तियों में विरोध है, पर भगवान् में सभी का समावेश हैं। (4.9.16)

5- शक्तिपरिणाम-भगवान् साक्षात् तो अविकारी है। शक्ति ही कार्य रूप में जगत् प्रकट करती है, अतः शांत घोर मूढता जैसे दोष जगत् में रह जाते हैं, भगवान् में नहीं।

जैसे- (धूल श्रम घर की सफाई करने वाले श्रमिक, नौकर को है सेठ जी को नहीं) अथवा कुंडल नाम रूप भग्न होता है, सुवर्ण (त्रिगुणात्मक प्रधान) नहीं। (देखो 11.6.8)

प्रकृतिः ह्यस्योपादानं आधारः पुरुषः परः।
सतोऽभिव्यजको कालः ब्रह्म तत्त्रितयं विदुः॥

–11.24.19

जगत सृष्टि में पुरूष=गौण निमित्त है।= गौण निमित्त कारण है।

प्रकृति=समवायी (उपादान) कारण है।

"इन्द्रो मायाभिः पुरुरुप ईयत"–इंद्र की माया ही पुरंजय नामक एक राजा का वाहन बनती है, स्वयं इंद्र नहीं। (देखो भाग स्कंध 9 अध्याय 6)

6-आविर्भाव तिरोभाव-जल तरंगवत् भगवान की शक्तियों का यथा काल आविर्भाव- तिरोभाव है।

(यथा महान्ति भूतानि भूतेषु उच्चावचेषु अनु
प्रविष्टानि अप्रविष्टानि तथा तेषु न तेषु अहम्॥)

–2.9.24

7-"दुर्घट घटकत्वं अचिन्त्यत्वम्"– वैष्णव तोषिणी 1.14.18

अभिन्न निमित्तोपादान ही वेदांत है :

सांख्य वैशेषिक न्याय, मीमांसा 'वैदिक' तो है वेदांत नहीं। क्योंकि वे ईश्वर को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान न मानकर 'निमित्त कारण' मात्र मानते हैं।

आत्मैव तदिदं सर्वं सृज्यते सृजति प्रभुः।
त्रायते त्राति सर्वात्मना ह्रियते हरतीश्वरः॥

श्री कृष्णः उद्धवम् 11.28.6

प्रकृति जगत् का मुख्य उपादान है ब्रह्म परम्परया उपादान है।

पुरुष (कर्म) मुख्य निमित्त कारण है, ब्रह्म परम्परया निमित्त है, देश काल सामान्य निमित्त कारण है। ये ईश्वर की ही शक्ति है। (11.24.19)

जगत् शक्ति परिणाम रूप है। (वैष्णव)

जगत् – विवर्त रूप है। (केवलाद्वैत)

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात् –(ब्र.सू.1.4.23)

अर्थात् ब्रह्म सृष्टि का उपादान कारण (प्रकृति) भी है क्योंकि तब प्रतिज्ञा एवं दृष्टांत वाक्य वाधित नहीं होंगे। (अनुपरोधात्)

प्रतिज्ञा वाक्य है –"उत तं आदिशं अप्राक्ष्यर्या।येन अश्रुतं श्रुतं भवति॥"

अर्थात् उस तत्व के विषय में गुरु से पूछो जिसे जानने पर अनसुना सुना हुआ हो जाता है।

उदाहरण वाक्य है–सौम्य एकेन मृत् पिण्डेन सर्वम् मृणमयं विज्ञातं भवति छान्दोग्य–6.1.4

(अर्थात् हे सौम्य! एक मिट्टी का ढेला जानने पर मिट्टी से बने सभी वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है।)

जीव

जीव

जीवों की अनेकता

अपरिमिताः ध्रुवा तनुभृतो यदिसर्वगताः ।
तर्हि न शास्यतेति नियमः, ध्रुव !नेतरथा ॥
अजनि च यन्भयं तद् अविमुच्य नियंतृ भवेत्
समम् अनुजानतां यद् अमतं मतदुष्टतया ॥

भागवत 10.87.30

जीव अनेक हैं एवं नित्य हैं यदि वे सर्वव्यापक होते तो वे आपके द्वारा शासित नहीं हो सकते थे। हे ध्रुव ! वे आपसे भिन्न, शासित एवं सीमित है (इतरथा:)। जो वस्तु किसी से उत्पन्न होती है। आप उनमें अंतर्यामी रूप में व्याप्त भी हैं (यन्मयं) आप उनमें व्याप्त होते हुए (अविमुच्य) उनके नियन्ता हो। आप समदृष्टि हो (समम्) जो यह कहते हैं कि मैंने आपको जान लिया है -यह अमत (गलत) ही है। बुद्धि से जानी गई वस्तु एवं ज्ञान असिद्ध ही होता है।

शक्ति शक्तिमान में भेद–

यथोल्मुकात् विस्फुलिंगात् धूमात् वापि स्वसम्भवात्।
अप्यात्भत्वेन अभिमतात् यथाग्निः पृथक् उल्मुकात्॥

–3.28.40

सामान्यतः अग्नि, उल्मुक= ईंधन, विस्फुलिंग=चिंगारी एवं धूम चारों वस्तुओं को एक 'अग्नि' कह दिया जाता है। इसी प्रकार अग्नि (श्री कृष्ण), उल्मुक (ब्रह्म परमात्मा भगवान), चिंगारी (जीव) एवं धूआं (देह/जगत्) को अग्नि ही (अद्वय तत्व) कह दिया जाता है। परंतु तत्त्वतः मुख्य अग्नि से उल्मुक, उल्मुक से चिंगारी, एवं चिंगारी से संबंधित धुंआ पृथक् होता है। इसी प्रकार शक्तिमान श्रीकृष्ण से, परमात्मा, जीव, प्रधान (देह एवं दैहिक) पृथक् ही है। इन सभी में अचिंत्य भेदाभेद है।

आत्मा की उपास्य रूपता

"नवा अरे! सर्वस्यकामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मनस्तु कामाय सर्वप्रियं भवति।....आत्मावा अरे दृष्ट्व्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासयितव्यः च॥"

वृहदा० 2.1.5

(आत्मा प्राणिगत चैतन्य ही है। अतः उसके संपर्क से पति पुत्र पत्नी धन प्रिय लगते हैं।)

शांकर मत में जीव

न आत्मा का अंश है न परिणाम। वह उपाधि से परिच्छन्न आत्मा ही है। अविद्या की उपाधि (मलिन सत्त्व) से युक्त आत्मा ही 'जीव' है-(पर एक आत्मा। देह-इन्द्रिय-मनो-बुद्धिभिः परिच्छिघा मुनिः। बालै शारीर इति उपचर्यते (शांकर भाष्य))।

वैष्णव मत में -जीव

तटस्था शक्ति की वृत्ति 'जीव' है। वृत्ति अनेक होती है, अतः वामदेव के मुक्त हो जाने पर भी देवदन्त बंधा रहता है। एवं देवदत्त के बंधें होने पर भी वामदेव की मुक्ति हो जाती है।

जीव में अविद्या सम्पर्क से कर्तृत्व आगन्तुक है। यदि यह कर्तव्य स्वाभाविक होता तव तो उसका मोक्ष ही नहीं हो सकता था। (नहि स्वाभाविकं कर्तृत्वं आत्मनः सम्भवति अनिर्मोक्ष प्रसंगात)–शांकर भाष्य

जीव प्रत्यगात्मा है। पराक् वस्तुऐं आत्मा से भिन्न है। जीव करोति (अन्नमय-प्राणमयकोश) इच्छति (मनोमयकोश) एवं 'जानाति' (विज्ञानमय कोश) का आश्रय है।

जीवों की किंचित् स्वतन्त्रता

कृत प्रयत्नापेक्षः तु विहित-प्रतिषिद्ध-अवैयर्थादिभ्यः

–ब्र.सू.2, 3.40

ईश्वर ने जीव को किंचित् स्वतंत्रता प्रदान कर कर्मेच्छा वाला बनाया है (कृत प्रयत्नापेक्षः), जिससे विधि – निषेध वाक्यों की सार्थकता बनी रहे।

'तु'शंका निरासार्थ है। कर्म की इच्छा जीव की अपनी है। कर्मशक्ति उसे ईश्वर से प्राप्त होती हैं। ईश्वर तो कर्म करने में साधारण निमित्त कारण है, जैसे कृषि में मेघ। जीव विशिष्ट निमित्तकारण है (जैसे बीज)।

जीवों के तीन शरीर-

१.स्थूलशरीर = ५ महाभूतों से निर्मित है ये चार हैं -स्वेदज्, उद्भिज, अंडज, जरायुज

२.सूक्ष्म शरीर= ५ प्राण + १० इन्द्रियां+ १ मन +१ बुद्धि= 17 तत्त्व

३.कारण शरीर= अविद्या निर्मित आवरण (देहाध्यास)

जीव: तटस्था शक्ति:

•जीव परमात्मा की तटस्था शक्ति (कौस्तुभ मणि) की वृत्ति (किरण) स्थानीय है। उसे परमात्मा का अंश ही कह दिया गया।

कौस्तुभ व्यपदेशेन स्वात्म ज्योतिः विभर्ति अजः।
तत्प्रभाव्यापिनी साक्षात् श्रीवत्सम् उरसा विभुः॥

–12.11.10

(कौस्तुभ के बहाने से आजन्मा प्रभु स्वात्म ज्योति को (तटस्था शक्ति को) धारण करते हैं। कौस्तुभ की किरण ही (प्रभा जीव) की स्थानीय होकर विभिन्न देह आदि में व्यापिनी होती है।)

अणु स्वरूप

जागृत् स्वप्न सुषुप्तस्य गुणत: ये बुद्धिवृत्तय:।
तासां विलक्षणो जीव: साक्षित्वेन विनिर्णय:॥

–11.13.17

बालाग्र शत भागस्य शतधा कल्पितस्य च
तस्मात् सूक्ष्म तरो जीव: सचानन्त्याय कल्पते॥
आदित्यवर्णं सूक्ष्माभं अप्बिन्दुम् इव पुष्करे
नक्षत्रमिवं पश्यन्ति योगिनो ज्ञान चक्षुषा॥

{स्कंदपुराण –प्रभास खण्ड परमात्मा संदर्भ (जीव गो•) प्रकरण 46 }

(बाल की नौंक के सौंवे भाग का भी सौवां भाग किया जाए, जीव उससे सूक्ष्मतर

है। वही मोक्ष (आनन्त्य) का अधिकारी होता है।)वह तेज युक्त सूक्ष्म, कमल पत्र पर जल की बिंदु के समान या छोटे नक्षत्र के समान ज्ञान चक्षु से दृश्य होता हैं।)-यह सूक्ष्मता जीव का परिमाण नहीं है। बल्कि उसकी संपूर्ण देह में व्यापकता की संकेतक है।

जीवों के वर्ग :-१-नित्य युक्त २- नित्य बद्ध

"तदेवं अनन्ता: एव जीवात्मा: तटस्था: शक्त्य:। तत्र तासां वर्ग द्वयं। एको वर्ग: अनादित: एव भगवत् परांग मुख: स्वभावत: तदीय ज्ञान भावात्, तदीय ज्ञान अलावा च। प्रथमो-अन्तरंगा शक्ति विलास अनुगृहीत् भगवत परिकर रूपो गरुणादिक:। यथोक्तं पाद्मोत्तर खण्डे--

त्रिपाद् विभूते: लोका: तु असंख्या परिकीर्तिता:
शुद्धसत्त्वमया: सर्वे ब्रह्मानन्द सुखाह्वया:
सर्वे नित्या: निर्विकारा: हेयराग विवर्जिता:
सर्वे हिरण्मया: शुद्धा कोटि सूर्य समप्रभा:.....।

अर्थ–त्रिपाद विभूतिमय बैकुंठ लोक भी असंख्य हैं। वे सभी शुद्ध सत्त्वमय हैं, सभी ब्रह्मानंद सुख रूप हैं। वे सभी नित्य निर्विकार एवं तुच्छ रागद्वेष से मुक्त हिरण्मय एवं कोटि सूर्य के समान प्रभा वाले हैं।

अस्य च तटस्थत्व जीवत्व प्रसिद्धे: ईश्वरकोटौ अप्रवेशात्॥
अपर: तु तात् पराड् मुखत्व दोषेण लब्ध छिद्र या
मायया परिभूत: संसारी। यथोक्तं हंसगुह्यस्तवे
सर्वं पुमानवेद, गुणांश्च तज्ज्ञो, नावेद, सर्वज्ञत्व अनन्तमीढे॥

–6.4.25 परमात्मसंदर्भ प्रकरण. 47

(संक्षेप में जीवों के दो वर्ग हैं-एक वर्ग अनादि काल से भगवान् की ओर उन्मुख है। दूसरा अनादि काल से भगवान् से परान्मुख है।)

1–प्रथम वर्ग- में नित्य भगवत् परिकर रूप गरुणादि आते हैं, जो स्वभावतः भगवद् ज्ञान से युक्त हैं। ये भी 'तटस्थ जीव' रूप में ही प्रसिद्ध है अतः इनका ईश्वर कोटि में प्रवेश नहीं है। ये भगवान् के दास ही हैं। इनके ऊपर अन्तरंगा शक्ति का विलास (कृपा) सर्वदा विराजमान है। इन्हें शुद्ध सत्त्वात्मक देह की प्राप्ति सर्वदा रहती है।

2–द्वितीय वर्ग- यह जीव अनादि काल से भगवान् से पराङ्मुख है। ये सच्चित् आनंद रूप अणु नित्य गुणादि से युक्त तो है, परंतु भगवत् माधुर्यास्वाद वंचित होने के कारण अकृतार्थ है। इन्हें कृतार्थ करने के लिए इनको अनादि त्रिगुणात्मिका माया शक्ति को सौंप दिया जाता हैं। माया शक्ति स्वयं ही इनके सामने आ जाती है-एकादश स्कंध में कहा गया है।

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात् (11.2.37)

माया शक्ति 'आवरण 'वृत्ति' के द्वारा जीव के द्वारा जीव का सच्चिदानंद रूप छिपाती हैं एवं विक्षेप द्वारा देहाध्यास (मैं प्रकृति हूं/ देह हूं) यह भ्रम करा देती है जीवों को उपाधि (देह) की प्राप्ति हो जाना ही उनका जन्म है।

जीव द्वारा ईश्वर का ध्यान न कर माया के कार्यों द्वारा अपनी पूर्णता खोजना ही द्वितीय अभिनिवेश है, यही जीव के भय का कारण है।

जीव विमोह में माया का कर्तृत्व है; ईश्वर का नहीं। भोग में जीव कारण है।

कार्य कारण कर्तृत्वे कारणं प्रकृतेः विदुः
भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं, प्रकृतेः परम्

–(3.26.8)

माया द्वारा जीव के बन्धन में ईश्वर का कोई हाथ नहीं है। माया का यह कार्य ईश्वर को रुचिकर भी नहीं है अतः वह लज्जित होकर भगवान् के सामने नहीं आती।

विलज्जमानया यस्य स्थातुं ईक्षापथेऽमुया
विमोहिता विकथ्यन्ते ममाहमिति दुर्धियः॥

पंचभूत (कार्य) 11 इंद्रियां(कारण) एवं इंद्रियों के देवता (कर्तृत्व) से मोह कार्य सिद्ध कराने में प्रकृति ही कारण है।

जीव की सृष्टि के पूर्व अकृतार्थता

नित्यबद्ध श्रेणी का जीव अनादि अविद्या (सुषुप्ति) से युक्त ही है। अतः अकृतार्थ ही है। उसे अपने सच्चिदानंद स्वरूप का भी पूर्ण बोध नहीं है। जैसे निद्रा में स्थित व्यक्ति को अपने स्वरूप का किंचित् ज्ञान होता है। सृष्टि के आरम्भ में उसे भी माया के प्रभाव से भूल जाता है।

गुणै: विचित्ता: सृजतीम् सरूपा: प्रकृति प्रजा:
विलोक्य मुमुहे सद्यः स इहं ज्ञान गूहया

–(3.26.5)

सदैव अनाद्यविद्यया युक्तोऽपि जीव: सुषुप्तौ यथा स्वरूपं किन्चित् उपलभते तथैव सृष्टे: पूर्वं प्रलयेऽपि स्वरूपं उपलभमान: एव आसीत्।

सृष्ट्यारम्भे तुं तद् विसस्मार इति अर्थ:।

–(सारार्थ दर्शिनी 3.26.5)

सृष्टि के पूर्व जीव की स्थिति सुषुप्ति जैसी ही थी।

(१) सुषुप्ति किसी की चिर अभीष्ट होती है। हम जागने की वासना लेकर सोते हैं।

(२) न अपने अहं स्वरूप (मैं देह हूं) की विस्मृति ही अभीष्ट होती है। कौमा दशा में भी किसी रोगी को देखना कोई नहीं चाहेगा।

(3) चिर आनंद के लिए साधन योग्यता भी सुषुप्ति में सम्भव नहीं होती है।अतः सृष्टि के पूर्व जीव अकृतार्थ था।

जीव का विमोह

माया का स्वभाव ही है कि वह जीव को विमोह एवं अध्यास प्रदान करती है जैसे चूना यदि हल्दी के संपर्क में आवेगा तो हल्दी को 'लाल' बना देता है। इसी प्रकार

जीव के स्वरूप की विस्मृति एवं देहाध्यास की प्राप्ति माया के प्रभाव से होती है भगवान् का इसमें कोई आदेश नहीं। भगवान् माया की इस मूल प्रकृति (स्वभाव) के साथ छेड़छाड़ नहीं करते।

जैसे नृत्य का दर्शन अपने स्वरूप को भूलकर मंच पर नृत्य करने वाली नर्तकी के साथ मन ही मन नृत्य करने लगता है, उसी प्रकार जीव अपने सच्चिदानन्द रूप को भूलकर देह के कार्य को अपना मानने लगता है-

एवं पराभिध्यान कर्तृत्वं प्रकृते: पुमान्
कर्मसु क्रियमाणेषु गुणै: आत्मनि मन्यते

– 3.2.6

मूलत: जीव तो साक्षी एवं अकर्त्ता है।

तत्त्वत: माया संपर्क में आने पर माया के प्रभाव से जीव को आवरण एवं विक्षेप द्वारा"मैं प्रकृति (देह) हूं" यह भ्रम (अध्यास हुआ)। आत्मा में एक तो 'स्वरूपभूत अहंकार' था ही, अर्थात् आत्मा 'अहं 'पद वाच्य ही थी। परंतु माया के प्रभाव से एक दूसरा 'अहं' भी आ गया कि 'मैं देह हूं'। जब तक यह 'द्वितीय अहं' नहीं आवेगा तब तक देह के कार्य को आत्मा अपना कार्य नहीं मानेगी। जैसे कोई ब्राह्मण कुमार (शुद्ध आत्मा) है, इसे किसी भूत की बाधा लगने पर (प्रकृति का सम्पर्क होने पर) नया अभिमान उत्पन्न हो गया-"मैं रामदेई दादी हूं" तब वह 'रामदेई' जैसा व्यवहार करता है। यह 'रामदेई-अहंकार' ही स्वरूप भूत ब्राह्मण कुमार अहंकार का आवरण कर लेगा। साक्षी या दर्शक 'आत्मा' ही दृश्य नर्तकी के नृत्य को (प्रकृति के कार्य को) अपना मानता है। परन्तु ऐसा मानना नर्तकी की कला (नए अभिमान) के कारण है।

"नृत्यतो गायत: पश्यन् यथैवानुकरोति तान् (11.22.52) इति त्यारी पराभिध्यानेन। प्रकृति अध्यासेन। सा च प्रकृति: देह एव इति। देह एव अहम्" इतिमननेन। प्रकृते: गुणै: क्रियमानेषु कर्मसु रूपादि ग्रहणेषु कर्तृत्वं आत्मनि मन्यते। तत्र निरहंभावस्य पराभिध्यान असंभवात्। परआवेश जात अहंकारस्य च

आवरकत्वात् अस्ति तस्मिन् अन्यः अहंभावः। स च(शुद्ध जीवः) शुद्ध स्वरूपमात्र निष्ठत्वात् न संसार हेतुः इति स्पष्टम्। विप्रकुमारस्य साहंकारस्यैव भूतावेशत्वे सति 'भूतोऽहं' इतिवत्। इतिविवेचनीयं (सारार्थ दर्शिनी (विश्वनाथ) 3.2.6)

'अहम् ममेति'असद् भावं देहादौ मोहजं त्यजेत्

–(7.7.20)

इति देहादि अधिकरणस्य मोहजस्य एव त्यागः। नतु स्वरूपभूतस्य।इति अहमर्थः।

(परमात्म संदर्भ.प्रकरण 46 पृष्ठ 82)

माया जन्य द्वितीय अहंकार के कारण जीव को बन्धन का भ्रम होता है

यदस्य संसृतिः बन्धः पारतन्त्र्यं च तत् कृतम्।
भवति अकर्तुः ईशस्य साक्षिणः निर्वृतात्मनः॥

–3.26.7

[अकर्त्ता ईश्वर की शक्ति (राजपुरुष) होने से ईश्वर (राजा) रूप में प्रसिद्ध साक्षी, आनंदस्वरूप इस जीवात्मा को जो संसार बन्धन, पारतंत्र का भ्रम हो रहा है वह द्वितीय अहंकार के कारण है (तत् कृतम्)।]

मायिक अहंकार जीवात्मा का स्वरूप नहीं। अध्यास या भ्रम है।
अहंकार संबंध से जीवात्मा का संसार है। संबंध टूटने से मोक्ष होगा।

अर्थे ही अविद्यामानेऽपि संसृतिः न निवर्तते
ध्यायतो विष्यान् अस्य स्वप्नेऽ नर्थागमो यथा

–11.22.55

[अहंकार एवं उसके योग्य विषय (अर्थे) आत्मा के स्वाभाविक धर्म नहीं है, (अविद्यमानेऽपि) फिर भी माया के प्रभाव से जब तक अहंकार निवृत्त नहीं होगा, संसार चक्र भी निवृत्त नहीं होगा, (संसृतिः न निवर्तते) जैसे-जब तक स्वप्न बना रहेगा तब तक स्वप्न के दुःख सुख भय बने रहेंगे। स्वप्न से जागने पर (अहंकार त्यागने पर) संसार दुःख दूर हो जायेंगे]

निरतिशय उपाधि-सम्पन्नः च ईश्वरःनिहीन उपाधि सम्पन्नाम् जीवान् प्रशास्ति

(शांकर भाष्य)

जन्म (आत्मा की स्थूल देह में अंहता बुद्धि 'जीव' का जन्म है)

जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रिय मनोमयः

तन्निरोधस्तु मरणं, आविर्भावस्तु सम्भवः

–(3.31.44)

अर्थात् आत्मा का लिंग शरीर (उपाधि) से सम्बन्ध होने पर 'जीव' का जन्म है। लिंग शरीर पुर्य्यष्टकयुक्त होता है। अर्थात् (1) ५कर्मेंद्रियां (2) ५ ज्ञानेन्द्रियां (3)५अन्तःकरण(मन बुद्धि चित्त अहंकार चेतन) (4) ५ प्राण (5)५ शब्दादि विषय (तन्मात्राएं)(6) अविद्या (देहाध्यास) (7) काम (8) कर्म। इन पुर्य्यष्टक का पंच महाभूत से रचित किसी स्थूल देह (भोगाधिष्टान) से संयोग हो जाता है। एवं सूक्ष्म देह (10 इन्द्रियां + 5 तन्मात्रा +1 मन+बुद्धि= 17 मुख्य तत्त्व) एवं स्थूल देह जब परस्पर संगठित होकर कार्य करते हैं, तब आत्मा स्थूल देह को ही अपना स्वरूप मान बैठती है। अतः आत्मा की स्थूल देह में अहंता बुद्धि 'जीव' का जन्म है।

मृत्यु- आत्मा का पुर्य्यष्टक सहित स्थूल देह से ममता बुद्धि त्याग कर देना और सूक्ष्म एवं स्थूलदेह का संगठित होकर कार्य न करना जीव की मृत्यु है।

समाधि- पुर्य्यष्टक का चित्त में तादात्म्य

सुषुप्ति- पुर्य्यष्टक का प्राणों में तादात्म्य

प्रलय- पुर्य्यष्टक का प्रकृति में साम्यावस्था में तादात्म्य

मोक्ष- पुर्य्यष्टक का आत्मा में तादात्म्य

(10.14.8)

अविद्या-इच्छा (काम) का कारण है

काम- यह आसक्ति द्वेष का कारण है

कर्म- संसार, शुभ अशुभ फल एवं जन्म का कारण है

माया

माया /काल /कर्म

माया

योगमाया

माया के अर्थ

जीवमाय–आवरण विक्षेप

जगत् कार्य में माया की निमित्त/ उपादानता

माया

माया–या वास्तव वस्तु आवृणोति अवास्तव वस्तु एव दर्शयति सा माया। अर्थात् जो वास्तव वस्तु को ढक ले, एवं अवास्तव वस्तु को दिखा दे।

योगमाया–

या वास्तव वस्तूनां मध्ये किमपि आवृणोति किमसि दर्शयति सा योगमाया।- (सारार्थ दर्शनी 10.13.5)

(वास्तव वस्तु के भी एक अंश 'ऐश्वर्य' को ढक ले एवं माधुर्य को दिखा दे।)

एका (श्रेष्ठा)+अनंशा (अभिन्ना) है। (अर्थात् श्रेष्ठ स्वरूप शक्ति का अंत होने से भगवान् सेअभिन्न) यही वैकुण्ठ में पूजिता है ।

दुर्गाम् विनायकं व्यासं विश्वक् सेनं गुरुं सुरान्,

स्वे स्थाने तु अभिमुखान् पूज्येत् प्रोक्षणादिभिः

– 11.27.29

माया के अर्थ–

1.गुण माया =अष्टधा प्रकृति जो जगत् की रचना करे–(मीयते अनया सा माया)।

माया तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्। (देखो गीता –7.4 -5)

2.जीवमाया =आवरण एवं विक्षेप करने वाली भागवत् शक्ति। (माया शंवटकरी प्रोक्ता)

जीव में आवरण है, परन्तु विकार नहीं। विकार प्रधान का ही है, क्योंकि प्रधान न तो चिद्रूप है एवं न निर्विकार है। आवरण जितना घना होगा अध्यास उतना ही ज्यादा होगा।

तया तिरोहित त्वात् च शक्तिः क्षेत्रज्ञ-संज्ञिता

सर्वभूतेषु भूपाल! तारतम्येन वर्तते॥

– विष्णु पुराण

[जीवमाया की आवरण शक्ति से क्षेत्रज्ञ जीवशक्ति का सच्चित् आनंद स्वरूप तारतम्य से तिरोहित होता है। अतः माया शक्ति तारतम्य से प्रभावशाली होती है। (क्रम संदर्भ (जीव गोस्वामी) 11.3.37]

3.कृपा=माया दम्भे कृपायां च–विश्वकोश

4.ममता=

5.ज्ञान=माया तु वयुनं ज्ञानम् – (कोश)

6.योगमाया='आत्ममाया तदिच्छा स्यात्। गुणमाया जड़ात्मिका' –महासंहिता

ऋतेऽर्थं यत् प्रतियेत न प्रतियेत चात्मनि।

तद् विद्यात् आत्मनो माया यथाऽभासो यथा तमः॥

–(2/9/33)

(जीव माया) /आवरण विक्षेप

•जीव विमोह करना माया का स्वभाव है, जिसका जो स्वभाव है भगवान् उसकी सहज स्वाभाविक संपत्ति के साथ छेड़खानी नहीं करते।

•माया बिना प्रयोजन के जीव के सच्चिदानंद स्वरूप का आवरण एवं देहाध्यास रूपी भ्रम उत्पन्न कर देती है। जैसे स्वभाव वशात् चूना हल्दी से मिलते ही उसका 'लाल रंग' कर देता है।

•माया जीव के सच्चिदानंद रूप का आवरण मात्र करती है लोप (लय) नहीं करती। जैसे अंधकार से चांदी सोना आदि का तेज मात्र आवृत होता है, पदार्थ लोप नहीं।

पदार्थेन विनाऽमुष्य पुंसः आत्मविपर्ययः

प्रतीयते उपद्रष्टुः स्वशिरः छेदनादिकः॥

–3.7.10

माया स्वभाव वशात् बिना प्रयोजन के ही जीव के सच्चिदानंद रूप का आवरण करती है एवं फिर "देह ही मैं हूं" यह भ्रम भी उत्पन्न कर देती है। जैसे स्वप्न साक्षी पुरुष का निद्रा (तमोगुण) पहले ज्ञान आनंद लोप करता है फिर स्वप्न में अपने शिर के कटने का भ्रम भी उत्पन्न कर देता है। जैसे वृक्ष अपनी छाती पर स्थित रत्नपदक को भूला हुआ व्यक्ति, उसे खोया हुआ मानकर दुःखी होता है। अथवा किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा (अहंकार/देह) के द्वारा की गई चोरी को संगप्रभाव द्वारा अपने द्वारा की गई मानकर राजपुरुष के (कर्मफल) द्वारा दण्डित भी हो जाता है।

सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुद्धयते

ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यम् उत बन्धनम्

–(3.7.9) (विदुरः मैत्रेयम्)

जीव का बंधन क्यों?

जीव भगवत् अंश (शक्ति) है 'ईश्वर' तथापि जीव के बंधन दुर्भाग्य, (कार्पण्य) का कारण माया है। यह तर्क से सिद्ध है कि माया द्वारा, जीव का तो बंधन है परन्तु मायावी प्रभु का नहीं।

वक्षे स्थितम् अपि रत्न पदकं विस्मृत्य नास्ति पदमकं (आनंदं) इति खिद्यते।
अन्य कृतं (देहेन मयया कृतं) कर्माणि (चोरं) स्वकृतं अभिमन्यते।
राजपुरुषै: दण्डयते। (सारार्थ दर्शिनी –विश्वनाथ चक्र.)

गुण माया प्रधान

माया जगत् की प्रत्यक्ष निमितोपादान कारण है।

ब्रह्म परम्परया अभिन्न निमितोपादान है।

सृष्टि में गौण निमित्त कारण

कालो, दैवं, कर्म, जीव–स्वभाव, द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकार:
तत् संघाते वीजरोह प्रवाह: यन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये॥

–10.63.26

१.काल –(त्रिगुणों का क्षोभ करनेवाली भगवत्शक्ति है)

२.दैव –(फलाभिमुख कर्म)

३.कर्म– (संचित एवं क्रियमाण कर्म)

४.स्वभाव–(कर्म संस्कार)

सृष्टि में गौण उपादान कारण

१ अहंकार(जीव)+५ द्रव्य(५ तन्मात्राएं)+५ क्षेत्र(५ भूत)+१० इन्द्रियां(प्राण)+१ आत्मा(मन)+१ विकार(महत्)

इन 23 तत्वों का समूह देह है। जो कर्म एवं उसके विपाक से मिलता है, (बीज रोह प्रवाहः) ये सब माया के कार्य हैं। भक्ति साधन से इस संसारचक्र का निषेध होता है।

•निमित्तांश जीव माया की दो वृत्तीयां हैं–

१ अविद्या

२ विद्या

विद्या विधे मन तम् विद्धि उद्धव शरीरिणां
बंधमोक्षकरी आछे मायया में विनिर्मिते

–11.13.3

विद्या एवं अविद्या अनादि (आछे) हैं। ये दोनों मेरे दो शरीर हैं जो माया से बने हैं। विद्या से मोक्ष एवं अविद्या से बंधन की प्राप्ति होती है।

(परमात्म संदर्भ प्रकरण 54)

जगत्

जगत्

माया एवं अहंकार

विराट् भगवान् का अवतार नहीं है

जगत् की सत्ताऐं व्यावहारिक, प्रातिमासिक, पारमार्थिक

जन्म, समागम, अवतार

सत्ताऐं

जगत् रचना का प्रयोजन

जीव के कर्मबंधन की निवृत्ति /कर्मज्ञान- भक्ति योगों (मोक्ष साधनाओं) की सिद्धि के लिए माया द्वारा जगत् की सृष्टि की गई है। इसमें ईश्वर का अपना कोई प्रयोजन नहीं है। (3.7.4)

ऐन्द्रजालिक का इंद्रजाल द्रष्टा का दृष्टिबंध करता है। स्वयं ऐन्द्रजालिक (जादूगर) का नहीं।

"अविप्लुताऽवबोधात्मा स युज्येत् अजया कथम् (3.7.5)

जीव एवं ईश्वर दोनों ही ज्ञान रूप है, फिर जीव माया से कैसे विमोहित हो सकते हैं, अहं ही मोहित होता है।

सेयं भगवतो माया यत् नयेन विरुद्धयते

ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यं उत बन्धनम्

–(3.7.9)

माया एवं उसका कार्य अहंकार ज्ञान (नयेन) से बाधित हो जाता है। जीव नित्यमुक्त है उसको दीनता एवं बंधन नहीं होकर भ्रमात्मक अहंकार का ही बंधन होता है। ज्ञान द्वारा इसी अहंकार का नाश होता है।

मायाकृत अहंकार ही लिंग शरीर एवं कारण शरीर का आश्रय है।

एकादशं स्वीकरणं ममेति शैयाम अहं द्वादशम् एक आहु:

–(जड़ भरत: रहूगणम्– 5.11.10)

(कुछ श्रेष्ठ विचारकों का मत है कि ५ कर्मेंद्रिय+५ ज्ञानेंद्रिय+१ मन यह ग्यारह पदार्थ ही लिंग शरीर में प्रमुख है। इन ग्यारह वस्तुओं में "ममता" बुद्धि ही लिंग शरीर है। जो बारहवें पदार्थ 'अहं' रूपी शैया में सोते हैं। यदि अहं को नष्ट कर दिया जाए तो कारण शरीर के नष्ट होने पर लिंग शरीर भी नष्ट हो जाएगा एवं मोक्ष हो जाएगा।)

कार्य कोटि के इसी अहं को त्यागना मोक्ष का मुख्य साधन है।

योगेन धृति उधम सत्वयुक्तो
लिंगं व्यपोहत कुशलोऽहमाख्यम्

–श्री ऋषभ: पुत्रान् (5.5.13)

भक्ति योग के द्वारा निरंतर धैर्य एवं योग चर्चा द्वारा लिंग शरीर को दूर करें। यहां अहंकार ही लिंग शरीर है। वही चित् (आत्मा) जड़ (देह) की ग्रंथि है।जैसे आकाशस्थ सूर्य निर्विकार है, जलस्थ सूर्य (जलार्क) चंचल होता है इसी प्रकार 'अहं' (चित् ग्रंथि) ही चंचल है। (3.27.1)

विश्वरूप (स्थूल धारणा) अवतार कोटि में (उपास्य) नहीं है।

तं सर्वधीवृत्यनुभूत सर्व, आत्मा यथा स्वप्न जनैक्षितैक:
तं सत्यमानन्द निधिं भजेत, नान्यत्र सज्जेत् यत आत्मपात:

–2.1.39 (श्री शुक:)

अर्थात् परमात्मा सभी की बुद्धि की वृत्ति के द्वारा (सर्वधी वृत्तिः) वह सब कुछ अनुभव कर लेता है। जैसे एक स्वप्न द्रष्टा पुरुष विविध पदार्थों को एवं स्वयं अपने को भी स्वप्न में देखता है। अतः सत्य आनंदनिधि उन भगवान् का ही भजन करना चाहिए। (वही द्रष्टा है) अन्य वस्तु में (स्वप्न में) आसक्त नहीं होना चाहिए। ऐसी आसक्ति आत्मपात का हेतु होती है।

'विश्वरूप' मायिक है भगवान् मायिक नहीं।

जैसे एक बार इंद्र पुरंजय नामक राजा (ककुस्थ) का वाहन बना तत्त्वतः इंद्र की माया ही वाहन बनी, स्वयं इंद्र नहीं। इसी प्रकार त्रिगुणात्मिका माया 'विश्वरूप' बनती है, भगवान् नहीं।

"मायायाः एव वृषरूपता न तु इन्द्रस्य (9.6.14) इंद्रस्तु स्वरूप भूतः एव एवं भगवतः विश्वरूपः मायिकः। "भगवत्त्वस्य मायिकत्वात् तटस्थ लक्षणत्वं"- इति व्यचक्षाणाः भ्रांताः एव। सारार्थ दर्शनी (विश्व.चक्र.) 3.7.2

"भगवत्ता ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है" यह भ्रांत मत है।

त्रिगुणात्मिका माया द्वारा जगत् की तीन सत्ताएं

1 व्यावहारिक सत्ता– "प्रधान " के कार्य रूप में जागृतदशा में दृश्यमान जगत् की प्रतीति। यह विनाशील होने से अनित्य/ मिथ्या है।

2 प्रतिभासिक सत्ता –उपलब्धि मात्र से वस्तु की 'सत्ता' सिद्ध नहीं होती –जैसे इंद्रजाल /स्वप्न दशा में जगत् आदि।

3.पारमार्थिक सत्ता –एकमात्र सत् ब्रह्म का (कारण) का दर्शन करना।

(मृतृका इत्येव सत्यम्)–(उप.)

संवृत्ति

शंकराचार्य ने संवृत्ति को जगत् का कारण माना है।

संवृत्ति का अर्थ– माया या अविद्या में संवृत्ति नामक एक धर्म है, जिससे वह अविद्या लौकिक व्यवहार को संपादित करा देती है। संवृत्ति से ही सारा लोकव्यवहार प्रकट होता है। जैसे घट से जल का आनयन। परमार्थ ब्रह्म के ज्ञान होने पर फिर अज (ब्रह्म) ही सब कुछ प्रतीत होता है।

"संवृत्तिः अविद्या विषयो लौकिक व्यवहारः।
तया संवृत्या जायते सर्वम्, परमार्थ सद्भावेन तु अजं सर्वम् आत्मैव।"

–मांडूक्य कारिका भाष्य –शंकराचार्य

Note– बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन की मध्यम कारिका में संवृत्ति का वर्णन है। इसी आधार पर गौड़पादाचार्य ने भी 'संवृत्ति' को स्वीकार किया है। फलतः भास्कराचार्य ने शंकर को "प्रच्छन्न बौद्ध" कहा है। असंग भिक्षु के "योगाचार भूमि " नामक ग्रंथ पर शंकराचार्य का संपूर्ण "अध्यास- वाद" खड़ा है। (बाद में इस ग्रंथ को राहुलसांकृत्यायन चीन से लाए थे)।

जन्म /समागम/ अवतार /प्राकट्य

अनित्ये "जननं" ।नित्ये परिच्छन्न "समागमः"
नित्याऽपरिच्छिन्न तनौ 'प्राकट्यं' चेति स त्रिधा॥

–सुबोधिनी कारिका (श्री वल्लभाचार्य) 2.6.1

जन्म–अनित्य शरीर (उपाधि) का प्रकट होना "जन्म "है।

समागम –नित्य एवं परिच्छन्न जगत् में चैतन्य अंतर्यामी का प्रकट होना "समागम" है

प्राकट्य – नित्य एवं अपरिच्छन्न स्वरूप से (भगवान्) प्रपंच गोचर होना प्राकट्य या 'अवतार' है।

सत्ता

किसी वस्तु की उपलब्धि मात्र से उसकी सत्ता सिद्ध नहीं होती। सत्ता चार प्रकार की होती है–

1. सत्य --जिसकी प्रतीति भी हो, उसकी सत्ता भी हो एवं नित्य भी हो जैसे वैकुण्ठ (चिद् विलास)

2. असत्य-- प्रतीति होने पर भी वास्तविक सत्ता ना हो, प्रतीति क्षणिक हो जैसे इंद्रजाल, ख पुष्प (चिद् विवर्त)

3. अनित्य-- प्रतीति तो हो, सत्ता भी हो परंतु नित्य नहीं हो ;जैसे कर्दम ऋषि द्वारा विमान की रचना या दृश्य जगत् (अचित् परिणाम)

4. मिथ्या --यत्र यस्य स्पर्शो नास्ति तत्र तस्य स्थितित्वम्

वैष्णव तोषिण(जीव)10.14.22

प्रतीति तो हो परंतु अधिष्ठान में सत्ता न हो। (चिदचित् परिणाम)

काल

स्वरूप

"त्रैगुण्य शून्य, जड़, द्रव्यं, कालः"

-(गीता भूषण भाष्य -बलदेव विद्याभूषण)

(अर्थात् जो त्रिगुणों से परे, अनादि अनंत ईश्वर की शक्ति रूप सृष्टि का गौण निमित्त कारण है।)

काल के विषय में तीन धारणाएं हैं

1.प्रकृति की 25वीं अवस्था

2.पुरुष का प्रभाव

3.त्रिगुणों का क्षोभकर्ता

एतावानेव संख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह
सन्निवेशो मया प्रोक्तः य : कालः पंचविशकः

–3.26.15

अर्थात् प्रकृति को "सगुण ब्रह्म" भी कहा गया है। वह प्रकृति 24 प्रकार की है यथा (मूल प्रकृति १+ महत् १+ अहंकार १+ तन्मात्राएं ५+ इंद्रियां १०+ पंचभूत ५ + मन १ = २४) ऐसी प्रकृति का ही पच्चीसवीं अवस्था (संनिवेश) काल है। ऐसा मैंने (श्री कपिल भगवान्) बताया है। इस कथन के अनुसार 'काल' प्रकृति की ही २५वीं अवस्था है। परंतु एक दूसरा मत है कि काल 'पुरुष' (श्री संकर्षण) का एक पौरुष या प्रभाव है। (यह मत ही मुख्य मत है)

प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालं एके यतो भयम्

–(3.26.16)

अर्थात् काल भगवान् का ही प्रभाव (पौरुष) या शक्ति है। जिससे प्रकृति के संपर्क में आने वाला जीव भयभीत रहता है।

काल की विशेषताएं हैं -

1.साम्या प्रकृति के त्रिगुणों में वह काल क्षोभ उत्पन्न करता है –

"प्रकृतेः गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि !

चेष्टा यतः स भगवान् कालः इत्युपलक्षितः

-3.26.17

हे मनु की पुत्री! प्रलय काल में जब प्रकृति साम्य एवं निर्विशेष अवस्था में रहती है तब भगवान काल ही उन गुणों में क्षोभ उत्पन्न करते हैं।

2.काल अनंत है। अन्य जड़ की सापेक्षता से ही उसकी गणना होती है।

3.वह मृत्यु का कारण होने से जीव के लिए भयावह है।

4.वह स्वयं जड़ होते हुए भी संसार चक्र का परिवर्तक है।

त्रैगुण्य शून्यः जड़ द्रव्यं कालः

गीता भूषण भाष्य भूमिका

– बलदेव विद्या भूषण

कर्म

स्वरूप

प्रागभाववत्, अनादि, विनाशि च पुं प्रयत्न निष्पाद्यं विसर्ग कारणम्

–(गीता भूषण भाष्य- भूमिका-बलदेव विद्या भूषण)

[जिसका स्वरूप पहले नहीं दिखे, जो अनादि तत्व है, फिर भी ज्ञान एवं भोग द्वारा विनाशी है, जो स्वयं जड़ है उसे जीव ही अपने प्रयत्न से निष्पादित करता है। ऐसा जीव के संसार (विसर्ग) का कारण कर्म कहलाता है।]

भूतभावोद्भव करः विसर्गः कर्म संज्ञितः

–गीता ८/३

[अर्थात् मनुष्य तिर्यक् देव आदि देहों को प्रकट कराने वाला (भूतभावोद्भव करः) एवं जीव को संसार चक्र में डालने वाला (विसर्गः) कारण कर्म है।]

कर्म भेद (गीता 4/17)

1.विकर्म –काम्य कर्म -(जन्म बंधन के कारण)

2.कर्म –निष्काम कर्म- (ज्ञानोदय का कारण)

3.अकर्म –ज्ञान -(मोक्ष का कारण)

4.कुशल कर्म (बुद्धियोग)= कर्म समर्पण (योगः कर्मसु कौशलम्) गीता

बुद्धि योग

समर्पित होकर अकर्तृत्व भाव से निष्काम कर्मों को भगवान् से जोड़ देना

1.निष्कामता "**कर्मण्यवाधिकारस्ते**"–गीता

समता- **"सिद्धयसि द्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते"**–गीता

2.अकर्तृत्व बुद्धि–**"कर्मण्यवाधिकारस्ते "**–गीता

3.बुद्धियोग– समर्पित होकर कर्म करना

नकर्मण्यम् अनारम्भात् नैष्कर्म्यं पुरुषोश्नूते

न च संन्यसनात् एव सिद्धिं समधि गच्छति।

–गीता

अर्थात् शास्त्रविहित कर्मों को न करने से ज्ञान (नैष्कर्म्य) की पुरुष को प्राप्ति नहीं हो सकती। केवल कर्मों का त्याग (सन्यास) मात्र से भी मुक्ति (सिद्धि) की प्राप्ति नहीं होती। अतः समर्पित होकर कर्म करना ही बुद्धि योग है।

4.कर्म समर्पण– जिससे कर्म बंधन कर्ता को न हो।

'कर्म प्रशंसा' एवं विधान 'कर्म त्याग' के लिए है–

परोक्ष वादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम्

कर्म मोक्षाय कर्माणि विधन्ते ह्यगदं यथा

(भाग 11.4.44)

जैसे बालक को अजीर्ण रोग होने पर मां (शास्त्र) लड्डू हाथ में लेकर (कर्म प्रशंसा कर) नींव का रस (कर्म असारता का वर्णन) पिलाती है। परंतु लड्डू खिलाती नहीं है। उससे तो और अजीर्ण होगा। (अतः शास्त्र वैराग्योपदेश देते हैं) परिणाम में बालक स्वास्थ्य लाभ (मोक्ष /सेवा सुख) प्राप्त कर लेता है।

कर्मयोग– चित्त शुद्धि का हेतु है ब्रह्म प्राप्ति का कारण नहीं है।

"चित्तस्य शुद्धये कर्म, न तु वस्तूपलब्धये

वस्तु सिद्धिः विचारेण, न किंचित् कर्म कारिभिः॥

उपास्य

ब्रह्म
अहंग्रहोपासना
स्वयं प्रकाश
नेति नेति
आनंदमीमांसा
ब्रह्म उपास्य में चार तर्क
ईश्वर
सगुण निर्गुण
परमात्मा
आत्मा
कूटस्थ
स्थूल धारणा
विशुद्धसत्त्व
नारायण
विष्णु
शिव
ब्रह्मा

ब्रह्म

स्वरूप

अविविक्त शक्ति-शक्तिमत्ता भेदतया (सामान्यतो लक्षितं)
प्रतिपाद्यमानं वा ब्रह्मेति शब्दचते।

भगवत् सन्दर्भ (जीव गो.) प्रक. २

(जहां शक्ति एवं शक्तिमान् पृथक् भेद रूप में प्रकाशित हो ऐसा सामान्य लक्षि
तत्व 'ब्रह्म' शब्दवाच्य होता है।)

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म तै

–3.21.1

* परिच्छेद सामान्यात्यन्ताभाववत् ब्रह्म (शारीरिक भाष्य शंकराचार्य) जो किसी
उपाधि से ढका हुआ न हो एवं जिसमें 'जाति' (सामान्य) का अत्यंत अभाव हो

ब्रह्म तु स्फुटम् अप्रकटित वैशिष्टचाकारेण तस्यैव (सम्वतः) असम्य आविर्भाव

(भागवत संदर्भ-जीव गो. प्रकरण-

अहंग्रहोपासना

"तत् तत् शक्तिविशिष्टः ईश्वर एवं अहम् "

वृष्हणात् ब्रह्म (व्यापक एवं वृहत् होने के कारण तत्व को ब्रह्म कहते हैं।)

"वृहत्वात् वृण्हणत्वा च यत् रूपं ब्रह्मसंज्ञितम्"

–2.3.5

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहम् गीता

–14.27

श्रीधरी "एकस्याऽपि तस्य अधिकारी विशेष प्राप्य सविरते-षाकार मगवत्वेन
उदयात् 'घनत्वम्'। निर्विशेषाकार ब्रह्मत्वेन उदयात् 'अघनत्वम'- इति।

(परतत्व एक है, वह किसी भक्त (अधिकारी विशेष) के सामने अपने भगवान्
रूप का जब उदय कराये तब वह 'घन विग्रह' रूप में अनुभव किया जाता है।
निर्विशेषाकार उदय होने पर उसका 'अघन' ब्रह्म रूप अनुभूति में आता है।)

मदीयं महिमानं च परे ब्रह्मेति शब्दितम्

वेत्स्यसि अनुगृहीतं मे संप्रश्नैः विश्तं हृदि॥

(8.24.38)

मेरी महिमा (अंगकांति / तेज) को ही परब्रह्म कहा जाता है। मेरे अनुग्रह से प्रश्नोत्तर रूप में तुम उसे हृदय में जानोगे।

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्ड कोटि-
कोटिषु अशेष वसुधादि विभूति भिन्नम्
तद् ब्रह्म निष्कलम् अनन्तम् अशेषभूत
गोविन्द आदि पुरुषं तमहं भजामि॥

–ब्रह्म संहिता 5/51

जिन प्रभावान् गोविन्द की प्रभा ही निष्कल, अनन्त अशेष 'ब्रह्म'है। जिससे करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्ड प्रकट होते हैं। जिनमें पृथ्वी, जल, तेज वायु, आकाशादि अनेक विभूतियों के भेद प्रकट होते हैं। उन आदि पुरुष गोविन्द का मैं (ब्रह्मा) भजन करता हूं।

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थम् एकं, अनन्तरं त्वबहिः ब्रह्म सत्यं
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवत्शब्दवाच्यं, यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति।

जड़-भरतःरहूगणम्-5.12.11॥

(वह ब्रह्म माया स्पर्श से रहित (विशुद्ध) ज्ञप्तिमात्र है। वही एक परमार्थ पदार्थ है। न उसका भीतर है एवं न बाहर है। वह सत्य व्यापक है। वह सबका अंतरंग, शांत एवं भगवान् है। उसे ही विद्वान् जन वासुदेव कहते हैं।)

•तरंग (शक्ति) फेन (जीव) भ्रमि (संसार) बुदबुद (जगत् आदयः)

सर्वं स्वरूपेण जलं (ब्रह्म) यथा तथा
चिदेव देहात् हि अयं अनन्तं एतत्
सर्वं चिदैवेकम् रसं विशुद्धम्

- योगवशिष्ठ

(जैसे तरंग फेन, भंवर, बुदबुद सबही स्वरूप स्थिति में जल ही है। उसी प्रकार चिद् ब्रह्म ही देह आदि की दृष्टि से अनन्त भेद वाला जगत् है। सभी कुछ एक सच्चिदानंद रुप, एक रसरूप, विशुद्ध तत्व है।)

स्वयं प्रकाश

प्रतियोगि अपेक्षा अभाव मात्रेण स्वयंप्रकाश : ।

श्री धरी 11.22.21

जो वस्तु स्वयं को प्रकाशित करने के लिए सजातीय, विजातीय एवं स्वगत किसी वस्तु की अपेक्षा न रखे। जैसे सूर्य के प्रकाशित होने के लिए किसी अन्य सूर्य, घट या निज के भी किसी एक अंग की अपेक्षा नहीं रखता है, वह स्वयंप्रकाश है।

(क्योंकि ब्रह्म को अपने से भिन्न (प्रतियोगी) वस्तु की अपेक्षा नहीं रहती अतः वह स्वयं प्रकाश है)

नेति नेति

(अतन्निरसन)/वृत्ति के आठ अर्थ हैं–

(1) प्राकृत मन वाणी द्वारा अगोचरता।

मनवाणी परतत्त्व का वर्णन नहीं कर सकती है- क्योंकि ब्रह्म-" प्राणस्य प्राणम्/ उत चक्षुषः चक्षुः। उत श्रोत्रस्य श्रोत्रं, उत अन्नस्य अन्नम्, मनसो वै मनो विदुः"–

क्रिया शक्ति (प्राण) संकल्प शक्ति (मन) इच्छाशक्ति (इन्द्रिय) तीनों का प्रेरक है। अतः प्राकृत प्राण मन इन्द्रियों से वह अगोचर है।

(2) चिन्मय-वाणी द्वारा ब्रह्म का आंशिक वर्णन होता है। वेद एवं भक्ति युक्त रसिकों की वाणी चिन्मय है।

उपनिषद् में कहा गया है-'तं तु औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि'

परंतु वेद असफल हो जाते हैं (जैसे सुमेरु की परिक्रमा न दे सकने वाले व्यक्ति का थककर "नेति नेति" वचन)

(3) वर्ण्यविषय की व्यापकता, वक्ता की अणुता, साधन की सीमितता, अर्चि अग्नि को नहीं जला सकती। इसी प्रकार अंश रुप वेद वाणी के सभी वर्णन सत्य तो है, परंतु पूर्ण नहीं।

(4) वेद 'नेति नेति' द्वारा 'बोधक शब्दों' का निषेध करते है। 'अर्थ' (ब्रह्म) का नहीं। क्योंकि अन्वय मुख से किए गए सभी वर्णन या तो मध्यम आकार या अन्य व्यावर्तन (निषेध) रूप होते हैं। अतः सीमितता की संभावना होती है। उसी का निषेध है विभु पदार्थ का नहीं।

(ज्ञान मार्ग में 'नेति नेति' द्वारा अध्यारोप का अपवाद है)

(5) वेद चार प्रकार से परतत्त्व का वर्णन करते हैं

(१)अभिधा द्वारा

(२)लक्षणा द्वारा

(३)तात्पर्य वृत्ति द्वारा

(४)निषेध द्वारा।

'नेति नेति 'यह ' आदेश वचन' है जो 'सीमितता' रूप अवधि का तो निषेध करते हैं परन्तु 'शून्यता' का स्थापना नहीं करते क्योंकि सभी निषेध अवधि युक्त ही होते हैं।यह सर्वाश्रयता का ही स्थापक वचन हैं।

(6)ब्रह्म की स्वरूप शक्ति ही उपास्य है, तटस्थता एवं बहिरंगा शक्तियां नहीं। ब्रह्म का स्वरूप ही 'तत्' है। अन्य जीव जगत् 'अतत्' है उनका निरसन करने पर 'तत् पदार्थ' ही उपास्य बचता है।

(7)माया के विवर्त या परिणाम से जो वस्तु विकारी (आगमापायि) प्रतीत हुई, उसे 'अतत्' कहते हैं, उसका निरसन कर 'तत्' पदार्थ ब्रह्म को उपास्य माना गया है।

नैतत् मनो विशति वाक् उत चक्षु आत्मा(बुद्धि)
प्राणेन्द्रियाणि च यथाऽनलम् अर्चिषः स्वाः
शब्दोऽपि बोधक निषेधतयात्ममूलं
अर्थोक्तमाहं यद्दते न निषेध सिद्धिः।

–(भाग० 11.3.36)

उस ब्रह्म में मन, वाणी, इंद्रिय, बुद्धि, प्राण कोई भी प्रवेश नहीं करते, जैसे-चिंगारियां अग्नि को नहीं जला सकती। ब्रह्म के वर्णन में माध्यम शब्द बोधक हैं। वे स्वयं का निषेध करते हैं, अर्थ रूप में बोध्य पदार्थ का नहीं। अर्थ की सत्य स्थिति के बिना निषेध की सिद्धि नहीं होती; क्योंकि निषेध सावधि होता है।

(8)व्यापक (ब्रह्म) को छोड़कर व्याप्य (जीव जगत् आदि) को उपस्य भजन अनर्थ हेतु है। 'तत्वमसि' इत्यादि में त्वम् का तत् स्थानीय वस्तु से अंशाशी रूप में ऐक्य है (तद्रूप-एक्य)। तत् स्वरुप एक्य नहीं (सारार्थ दर्शिनी 6.16.57)।

यदेतत् विस्मृतं पुसो मदभावं भिन्न आत्मनः
ततः संसार एतस्य देहात् देह मृतेःमृतिः

(श्री संकर्षण चित्रकेतुम् 6.16.57)

जब उपास्य तत्त्व का विचार करने वाले जीव द्वारा (पुंसः) ईश्वर को उपास्य रूप में विस्मृत कर दिया जाता है, (आत्मनः मद्भावम् विस्मृतं) तब वह जीव जगत् को आत्मा पदार्थ से भिन्न उपास्य मान बैठता है (भिन्नः आत्मानः) तभी तो उसे संसार प्राप्त होता है। एवं वह देह प्राप्ति को आत्मा का जन्म एवं देह की मृत्यु को आत्मा की मृत्यु मान बैठता है जो अनर्थ है।

आनंद मीमांसा

(तैत्तरीय उपनिषद्)(क्रमश: 100 गुणा अधिक आनंद उत्तरोत्तर है।)

1.मानुषानंद(युवा शिक्षित नीरोग पृथ्वीपति मनुष्य का आनंद)

2.मनुष्य गंधर्वानंद (उत्तम कर्म द्वारा गंधर्व योनि जो मनुष्य योनि में ही है)

3.देवगंधर्वानंद (गंधर्व योनि में जन्म)

4.पितृ लोकानंद (चिर स्थायी पितृ लोक में स्थिति)

5.अजानज देवानंद (नित्य प्राकृतिक तत्त्वों के अधिदेवों का आनंद)

6.कर्म देवानंद (कर्मफल द्वारा देवयोनि में जन्म)

7.नित्य देवानंद (वसु, आदित्यादि नित्य देवों का आनंद)

8.इंद्र आनंद (इंद्र का आनंद)

9.बृहस्पति आनंद

10.प्रजापति आनंद (ब्रह्मा के पद का आनंद)

11.ब्रह्मानंद (मोक्ष सुख)

12.भगवदानंद (पार्षद -सेवा सुख-ऐश्वर्यमय)

13.प्रेम सेवानंद (नराकृति भगवत् स्वरूप की रागमयी सेवा)

ब्रह्म ही उपास्य

इसमें चार तर्क हैं ------

अन्वय व्यतिरेकाभ्यां तर्कस्तु चतुरात्मक:

आगमापापि-तदवधि भेदेन प्रथमो मत:

द्दष्ट्- द्रश्य- विभागेन द्वितीयोऽपि मत: तथा

साक्षि-साक्ष्य विभागेन तृतीय: सम्मत: सतां

दुखि-प्रेमास्पदत्वेन चतुर्थ: सुखबोधक: ॥

क्रम संदर्भ (जीव गो.) 11.3.39

1. जगत् षट् भाव विकारों से युक्त (आगम-अपायि) है। छ: भाव विकार है-- जायते, अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते विनश्यति।

2. द्दष्टा द्दश्य की अवस्थाओं को देखता है, भोगता नहीं। वह द्दश्य से भिन्न है।

3. ब्रह्म जगत् जीव का साक्षी है, साक्ष्य नहीं।

4. ब्रह्म सुख रूप है, जबकि जगत् एवं बद्धजीव दु:खी है।

ईश्वर

स्वरूप:

ईश्वर की निम्न छ: परिभाषाएं हैं–

1) विभु संवित् ईश्वर:। अणु संवित् जीव:। संवित् स्वरूपोऽपि ईश्वर: जीवश्च संवेत्ता। विशेष सामर्थ्यात् तत् (संविद:) अव्यत् (संवेत्ता) व्यवहार:

–गीता भूषण भाष्यं –बलदेव विद्या भूषण

(ईश्वर विभु एवं ज्ञान रूप है एवं जीव अणु एवं ज्ञान रूप है। दोनों ही ज्ञानरूप एवं ज्ञाता (समवेत्ता) उभय रूप है) जैसा कि कहा गया है -

संवित्- रूप = (विज्ञानं आनंदं ब्रह्म) संवेत्ता- रूप = (य: सर्वज्ञ सर्ववित्)

2) मत्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुष: ।सोऽकामयत् बहुस्याम्– उपनिषद.

3) ब्रह्म (ईश्वर) सविशेष है। अतः वह 'ज्ञान रूप' एवं ज्ञाता दोनों रूपों में व्यवहार किया जाता है। भेद प्रतिनिधि न भेद को 'विशेष' कहते हैं।

4) क्लेश-कर्म-विपाकाशयै: अपरामृष्ट: पुरुषविशेष: ईश्वर:

पांतजल योगसूत्र- 24 (समाधि पाद)

क्लेश पांच है-

1. अविद्या (जीव के सच्चिदानंद रूप का अज्ञान)
2. अस्मिता (अहंकार)
3. राग (सुखदाई विषयों में आसक्ति या तृष्णा)

4. द्वेष (दुःखदाई वस्तुओं के प्रति क्रोध)

5. अभिनिवेश (जीवित रहने की इच्छा)। कर्म जन्म का हेतु है। विपाक कर्म के परिणाम में प्राप्त सुख- दुःख है। एवं आशय संस्कार हैं जिनसे पुनः कर्म में प्रवृत्ति होती है। इन सभी से अलिप्त विशिष्ट पुरुष ईश्वर है।

5) सृष्टि -पालन संहार कर्ता

जन्माद्यस्य यतोऽ न्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदाय आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥ (भागवतम् 1.1.1)

जगत् के सृष्टि पालन संहार के निमित्त कारण को ईश्वर कहते हैं। (मीमांसक)

6) कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम् ईश्वरः (वैष्णवताः)

(जो होनी को न होने दे एवं उसे अन्य रूप में प्रस्तुत कर दे।)

सगुण निर्गुण

श्रुतिया पर तत्त्व का तीन शैलियों में वर्णन करती है-

1.केवल विशेष्य आविर्भाव-निष्ठ वर्णन (निर्गुण ब्रह्म)

ऐसा वर्णन निषेध मुख से ही होता है, जैसे- अरूपं पाणिपाद असंयुक्तम् इत्यादि

इस वर्णन शैली में नाम-रूप-क्रिया सभी का अंतर्भाव 'स्वरूप' में ही होता है,

यह परतत्त्व को असम्यक् आविर्भाव है।

ब्रह्म तु स्फुरम् अप्रकटित वैशिष्ट्याकारत्वेन तस्यै असम्यक् आविर्भावः

(भगवत् संदर्भ (जीव गो०) प्रकरण-5)

2.केवल विशेषण आविर्भाव निष्ठ वर्णन (जीव /जगत् वैकुण्ठ)

जैसे- ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ज्ञानवैराग्ययोः चैव षण्णां भग इतींगनाः।

3.विशिष्ट आविर्भाव निष्ठ वर्णन

जैसे- ज्ञानं विशुद्धं परमार्थम् एकं अंनतरं तु अबहिः ब्रह्म सत्यं
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवत् शब्द संज्ञं यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति॥
(जडभरतः रहूगणम् 5.12.11)

अत्र आनंदमात्रं विशेष्यं समस्ताः शक्तयः विशेषणाणि।
विशिष्टो भगवान् इति आयातं।
तथा चैवं विशिष्टे प्राप्ते पूर्णाविर्भावत्वेन अखण्डतत्त्व रूपोऽसौ भगवान्॥

–भगवत् संदर्भ (जीव.गो.) प्रकरण -3

सत् चित् आनंद

•अतः 'सत्यं' की व्याख्या 'असत् प्रतियोगी' ज्ञानं न नहीं है।

चित् का अर्थ-अज्ञान प्रतियोगी, एवं 'आनन्द' का अर्थ दुःखप्रतियोगी मानना एक अपूर्ण व्याख्यान होगा। भगवान् के नाम रूप गुण स्वरूप से अभिन्न ही है।

•जब 'आत्मा' आत्मीय होकर आस्वाद्य बनती है तो यही आत्मा का सम्यक् पूर्ण आविर्भाव है।

•भगवत् गुण अहेय है। (हेय रूप में त्याज्य नहीं है।)

"भगवान् इति नित्य योगे मतुप्" ("अपाणिपाद संयुक्त"-इति संयोग सम्बन्धः परिहिन्यते नतु समवाय सम्बन्धः इति ज्ञेयं (भगवत् संदर्भ (जीवगो.) प्रकरण. 3)

•"भगवत् शब्द से भगवान् ब्रह्म स्वरूप ही है"-यह अर्थ वाच्य है। लक्ष्य नहीं। 'गंगा' शब्द नदी का वाचक है 'तट' अर्थ का लक्षक नहीं।

(भगवत् शब्देन ब्रह्म -स्वरूपं वाच्यं, नतुलक्ष्यं। यथा गंगाशब्दः नदी विशेष्य वाचकःनतुलक्षकः। (भगवत् संदर्भ (जीव.) प्रकरण.)

निर्गुण को जानने की प्रक्रिया प्रत्याहार द्वारा मनः शुद्धि है एवं सगुण को जानने की प्रक्रिया मन को स्पर्शमणि न्याय से विशुद्धसत्वात्मिका भक्ति के संयोग से चिन्मय बनाना है।

निर्गुण का बोध करने की प्रक्रिया

तथादि भूमन् महिमाऽगुणस्य ते विवोद्धुमर्हति अमलान्तरात्मभिः
अविक्रियात् स्वानुभवत् अरूपतः हि अनन्य बोधात्मतया, न चान्यथा

- 10.14.6

पहले प्रत्याहम् द्वारा मनकी शुद्धि की जाय फिर-

1- ब्रह्म में विशेष आकार का त्याग किया जाय (अविक्रियात्)

2- जब अन्तःकरण को आत्माकार (आत्मा में लीन) कर दिया जाएगा तब ब्रह्म स्वयं प्रकाशित हो जायगा (वह घट पट की तरह अन्तःकरण से प्रकाश्य नहीं होगा)(स्वानुभवात्)।

3-ब्रह्म को रूपात्मक नहीं माना जाय-जिसमें "इदं ब्रह्म" "अहं ब्रह्म जानामि" की घट पट की तरह रूपात्मक अनुभूति नहीं होगी (अरूपतः)।

4-ब्रह्म का बोध किसी बुद्धि आदि 'साधन' एवं उपाधि आदि 'विषय' के रूप में नहीं होता है वह ब्रह्म अपने स्वरूप का 'स्वयं प्रकाश' कर देता है। (ह्यनन्य बोधात्मतया)

परमात्मा

लक्षण

प्रकृति-जीव प्रवर्तकावस्थ परमात्माऽपर पर्य्याय स्वांशलक्षण-पुरुषद्वारा यत् (तत्त्वं) अस्य सर्गस्थित्यादि हेतुः भवति ॥

–भगवत् संदर्भ – जीवगो. प्रकरण 4

(अर्थात् जो प्रकृति, जीव को प्रकट करता है। जिसका दूसरा नाम 'परमात्मा' है। भगवान् के स्वांश रूप पुरुष (संकर्षण) द्वारा जिन जीव जगत् का प्रकाशन होता है। ऐसे सृष्टि स्थिति संहार आदि के हेतु तत्त्व को परमात्मा कहते हैं।)

स्थिति उद्भव-प्रलय हेतुः अहेतुः अस्य
यत् स्वप्न जागर सुषुप्तिषु सद् बहिश्च
देहेन्द्रियासु हृदयानि चरन्ति येन
संजीवितानि तद् अवेहि परं नरेन्द्र ॥

– पिप्पलायनः निमिं 11.3.35

जो जगत् की स्थिति, जन्म एवं प्रलय का कारण है। परंतु जगत् कार्य जीव के कल्याण के लिए ही है। ईश्वर का आत्माराम होने से कोई निज प्रयोजन नहीं है। वह प्रकृति में (सत्) जागृत स्वप्न सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में स्थित है एवं शुद्ध

जीव में भी अंतर्यामी होकर (बहिः) स्थित है। तथा अवशिष्ट रूप में भी स्थित है। देह, इन्द्रियां, प्राणों एवं अन्तःकरण को वह जिलाता है। वही परमात्मा है।

संक्षेप में परमात्मा के दो कार्य हैं।–

1 सृष्टि पालन संहार

2 साक्षी होना

केचित् स्वदेहान्तः हृदावकाशे
प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्
चतुर्भुजं कंज–रथांग - शंख-गदाधरं

धारणया स्मरन्ति - 2/2/8.

आत्मा

लक्षण

(अत, सातत्यगमने+मनिन्(उणादि))

यदाप्नोति, यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह
यच्चास्य सन्ततो भावः तस्मात् आत्मा तदुच्यते।

[अद्वय ज्ञान तत्त्व को इसलिए "आत्मा" कहा जाता है क्योंकि वह पारमार्थिक सत्ता में सभी वस्तुओं का (प्रलय काल में) आश्रय है (आप्नोति)। वहीं प्रातिमासिक सत्ता में सभी वस्तुओं का साक्षी है (आदत्ते।) वहीं व्यावहारिक सत्ता में सभी विषयों का भोक्ता है (अत्ति)। जीव-जगत् सभी का वही सृष्टि, स्थिति, संहार काल में आश्रय (संतत भाव) है]

आत्मा के १२ लक्षण

आत्मा नित्योऽव्ययः, शुद्धः एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः।
अविक्रियः स्वदृग्, हेतु, व्यापकः असंगि अनावृतः ॥

प्रह्लादः असुरबालकान् 7.7.19

कूटस्थः

एकरूपतया तु यः कालव्यापी सकूटस्थः

–श्रीधर स्वामी

विभिन्न मतों में आत्मा का स्वरूप

भौतिकवादी –प्राज्ञ एवं प्राण (चेतना एवं गति) से युक्त देह।

चार्वाक् –स्थूलशरीर

नैयायिक / मीमांसक – सत्

सांख्य / वैशेषिक –सत् चित

योग / वेदान्त –सत्चित् आनंद

वैष्णव – तटस्था शक्ति/ आनंद शक्ति का संकोच / अणु चित्

भगवान्

लक्षण

विविक्त ताद्दश शक्ति, शक्तित्ता-भेदेन प्रतिपाद्यमानं
भगवान् इति शब्दयते

(भगवत् संदर्भ प्रक०२)

(असाधारण स्वरूप ऐश्वर्य माधुर्य प्रकाशक शक्ति का शक्तिमान् से जहां पृथक् भेदप्रतीत हो उस अद्वयज्ञान तत्त्व को 'भगवान्' कहते हैं।)

स्वरूपशक्ति विलासमयत्वेन तत्र (जगत् व्यापारेषु) उदासीनं तद्भगवत् रूपं विद्धिं।–क्रम संदर्भ (जीव11. 3.35.) अथवा (10.28.6),

आनन्द मात्रं' विशेष्यं समस्ताः शक्तयः विशेषणानि।
विशिष्टो भगवान् इति आयातं।
तथा चैवं विशिष्टे प्राप्ते पूर्णा विर्भावत्वेन अखण्डतत्त्वरूपोऽसौ भगवान्।

–भगवत् संदर्भ प्रक . 3

('आनन्दमात्रं' विशेष्य है एवं अन्य त विशिष्ट भगवान् है ऐसा सिद्ध हुआ। शक्ति विशिष्ट अखण्ड तत्त्व का पूर्ण आविर्भाव 'भगवान्' कहलाता है।)

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः
ज्ञान वैराग्ययोः चैवं षण्णां भग इतींगना॥"

समग्रतायुक्त ६ ऐश्वर्य ही 'भग' कहलाते हैं। छः ऐश्वर्य हैं–

1.ऐश्वर्य 2. वीर्य 3.यश 4.श्रीः 5.ज्ञान 6.वैराग्य।

अथवा

"मोहनं कर्षणं रूपं बलं वैदग्ध्यमेव च
अभिलाषोपपन्नत्वं षण्णां भग इतींगना"

मधुर लीला में छः ऐश्वर्य हैं

1.मोहन 2.कर्षण 3.रूप 4.बल 5.वैदग्ध्य 6.प्रेम आस्वादन की अभिलाषा से युक्त होना।

स्वरूप शक्ति विलासमयत्वेन तत्र (जगत् व्यापारे)
उदासीनः भगवत् रूपं विद्धि- क्रमसंदर्भ

- जीव गो 11.3.35

स्वरूप शक्ति के साथ विलास करते हुए भगवान् रत रहते हैं। अतः जगत् रचना आदि व्यापार में वे उदासीन ही रहते हैं। यह कार्य उनकी अचिन्त्य शक्ति करती है।

आनंदमयोअभ्यासात् (ब्र. सू. 1.1. 6) में मयट् प्रत्यय विकार अर्थ में नहीं है; वह 'स्वरूप' एवं 'प्राचुर्य' अर्थ में है।

(तत् प्रचुरत्वं हि तत् प्रभूतत्वं। तच्च इतर सत्तां नावगमयति)

(सर्व सम्बादिनी –भगवत् संदर्भ प्रकरण-51)

सत् चित् आनन्द मात्र

मात्रं स्वरूपान्त रंग धर्मः

मूर्ति - गोचरीभूत स्वरूपान्तरंग धर्मः।

नहि अत्र अपरस्मिन अर्थे मूर्ति शब्दः। केवलात्म परः।

(श्रीधरी 10.13.54)

स्वरूप का ही एक ऐसा अन्तरंग धर्म जो गोचरी भूत तो हो, परंतु उपाधि रूप नहीं हो। अर्थात् देह देही स्वरूप में ब्रह्म में अविभाग है।

विशुद्ध सत्त्व = स्वयं प्रकाशता युक्त स्वरूपशक्ति

(मायातः परा भगवतः स्वरूप शक्ति :।)

तस्य वृत्तित्वेन चिद्रूपं शुद्ध सत्त्वाख्यं 'सत्व' इति

क्रमसंदर्भ -२.९.१०

(त्रिगुणात्मिका माया से भिन्न भगवान् की ऐसी स्वरूपशक्तिः जिसकी वृत्ति संधिनी द्वारा वैकुण्ठ एवं भगवत् स्वरूप को, संवित् द्वारा ज्ञान को, एवं अह्लादिनी द्वारा-आनंद एवं भक्ति को प्रकट करती है।) प्राकृत सत्त्वका प्रलय में लय हो जाता है। परंतु शुद्ध सत्त्व का नहीं अतः वह माया से अतीत अलग ही वस्तु है।

(देखो....क्रमसंदर्भ 12.8.46)

प्रवर्तते यत्र रजः तमः तयोः

सत्त्वं च मिश्रं न च काल विक्रमः

–2.9.10

अर्थात् वैकुंठ में रज एवं तम दोनों गुण प्रवृत्त नहीं होते हैं। इन दोनों के मिलने से जड पदार्थ भी वहां नहीं है। वह प्राकृत सत्त्व भी नहीं है जो रज तमके मिलने पर ही कार्य करता है। बल्कि "विशुद्ध सत्त्व" एक अलग वस्तु है जिसमें काल का प्रभाव नहीं होता।

अत 'सत्त्व' शब्देन स्वप्रकाशता लक्षण स्वरूप शक्तिवृत्तिविशेष उच्यते।

–भगवत्संदर्भ (जीवगो) प्रकरण। 10

नारायण

नारायणः त्वं न हि सर्व देहिनां आत्मासि अधीश! अखिल लोक साक्षी

नारायणोऽगं नरभू जलायनात् तच्चापि सत्यं न तवैव माया

–10.14.14

क्या आप (श्री कृष्ण) नारायण नहीं हो? 'नराणां समूहः नरः'के अनुसार आप सभी मनुष्यों के स्वामी एवं साक्षी हो। तत्त्वतः श्री परम व्योमनाथ नारायण आपके अंग (अंश) हैं। 'नर' अर्थात् गर्भोदशायी के अंग से प्रकट होने वाला जल भी 'नार' कहलाता है उसमें शयन करने से आप 'नारायण' नाम से प्रसिद्ध हो। वे गर्भोदशायी नारायण भी सत्य है। वह आपका निवास भूत (कारण/ गर्भ/ क्षीर) समुद्र माया नहीं है।

नारायण तुरीय तत्त्व है, जो संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध व्यूहों से परे है।

संकर्षण - प्रकृति साक्षी (प्रवर्तक), कारण समुद्रशायी, २३ तत्त्व प्रकट कर्ता है। प्रद्युम्न-हिरण्यगर्भ साक्षी (प्रवर्तक)गर्भसमुद्रशायी ब्राह्मा जी को उत्पन्न करते हैं एवं

अनिरुद्ध- जीव प्रवर्तक (साक्षी), क्षीरसमुद्रशायी, सृष्टि पालक विष्णु हैं।

विष्णुः

दीपार्चि एव हि दशान्तरम् अभ्युपेत्य
दीपायेत विवृत हेतु समानधर्मा
यः ताद्दगेव हि विष्णु तया विभाति
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि

–ब्रह्मसंहिता-6

(जैसे दीपक से जलाया गया दूसरा दीपक समान गुण धर्म वाला होता है। एक दीपक की ज्योति ही दशान्तर को प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार जो गोविन्द ही विष्णु रूप में प्रकाशित होते हैं उन गोविन्द का मैं भजन करता हूं।)

* विष्णु सत्त्व गुण का स्पर्श न करते हुए केवल दृष्टि मात्र से उसका उपकार करते हैं। जबकि शिव माया का स्पर्श कर लेते है एवं ब्रह्मा तो मायिक उपाधि वाले ही हैं।

शिव

क्षीरं यथा दधिविकार विशेष योगात्
संजायते न तु ततः पृथगस्ति हैतोः
यः शम्भुताम् अपि तथा समुपैति कार्यात्
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥

ब्रह्म संहिता 6/45 ॥

दूध में खटाई का जामन (विकार विशेष) लगाने पर जैसे दूध दही ही बन जाता है, यद्यपि दही दूधसे पृथक् पदार्थ नहीं है। इसी प्रकार जो श्री गोविन्द प्रलयादि कार्य के लिए शम्भुता प्राप्त कर लेते हैं, उन गोविन्द का मैं भजन करता है।

शिव के चार स्वरूप है (प्रत्यभिज्ञा हृदयं - श्री राजनक क्षेमराजः)

1- परमशिव भट्टारक– निराकार ब्रह्म।

स्पन्दन रहित ='परमं' /अर्थात् 'परम् अहंता' रूप/ (जहां 'अहं' (शिव) में इदं (शक्ति) प्रकाश नहीं है।)

2- सदाशिवः –त्रिगुण माया से परे, चिन्मय शक्ति से विस्तारयुक्त, शिव लोक के स्वामी। सदाशिव में पंच शक्तियों का उन्मेष है- आनंद (सदाशिव) चित (जीव). इच्छा (पार्वती) ज्ञान (मोक्ष) क्रिया (नाम धाम आदि चित् शक्ति का विस्तार (कारण शरीर से मुक्तिदाता)

3- शिव-शक्ति–त्रिगुणात्मक माया (जामन= दही) का शिव में स्पर्श है। ये जगत्

का स्पन्दन प्रकाशित करते हैं। ये पशुपति है- अर्थात् पशु (जीव) को माया पाश से बन्धन एवं मुक्ति दोनों देने वाले (पति) है।

ये सृष्टि-स्थिति- संहार-निग्रह-अनुग्रह इन कल्याणों से युक्त हैं।-

•निवाणार्थ तीन उपायों के उपदेशक है -

1- आणव उपाय (जीव द्वारा किये जाने योग्य)(कर्म-ज्ञान- भक्ति योग आदि)

2- शाक्तोपाय - (मंत्र तंत्र शक्ति)

3- शांभव उपाय- (ईश्वरीय कृपा शक्ति) (सूक्ष्मशरीर से मुक्तिदाता)

4- रुद्रः–प्रलयकर्ता। लोकपाल। (स्थूलशरीर से मुक्तिदाता)

ब्रह्मा

भास्वान् यथाश्य-शकलेषु निजेषु तेजः
स्वीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र
ब्रह्मा य एव जगदण्ड विधान कर्ता
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि।

–ब्रह्म संहिता

(जैसे सूर्य ही पाषाण खण्ड सूर्यकान्त मणि में अपने कुछ तेज को केन्द्रित कर अपनी प्रकाशता दाहकता प्रकट कर देता है। इसी प्रकार श्रीगोविन्द ही ब्रह्मा बनकर ब्रह्माण्ड की व्यवस्था रचना करते हैं। उन गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।)

ब्रह्मा की तीन कोटियां हैं।

1-निष्काम कर्म मार्ग का सौ जन्मों तक सेवन कर ब्रह्मा के पद को प्राप्त करने वाला-प्रथम कोटि का ब्रह्मा है। (स्वधर्मनिष्ठः शतजमभिः पुमान् विरचितामेति- 4.24.29)। ये ब्रह्मा महाप्रलय (प्राकृतिक प्रलय) काल में प्रकृति में लय होते हैं, एवं पुनः सृष्टि काल आनेपर प्रपंच में ही जन्म लेते हैं, क्योंकि इनमें भेददृष्टि एवम् अभिमान की स्थिति बनी रहती है। (देखो भाग० 3/32/13-14)

2-योग-मार्ग से समाधि में 'क्रम-मुक्ति' प्राप्त करने वाला योगी। यदि मन एवं इन्द्रियों को साथ लेकर जब योगी अपने साधक स्थूल शरीर का त्याग करता है, तो वह "सत्य लोक" में भी पहुंच जाता है (देखो भाग. 2.2.22)। वहां शोक, जरा, मृत्यु नहीं है (2.2.27)। महाप्रलय होने पर प्रकृति के आवरण के भी भंग होने पर निरावरण ब्रह्मज्योति में ऐसे बह्मा का सायुज्य होता है (2.2.31)। यदि ऐसे ही किसी ब्रह्मा को भगवत् कृपा प्राप्त हो जाय (चतु:श्लोकी) तो वे वैकुण्ठ पार्षद बन जाते हैं।

3-यदि किसी सृष्टि में ऐसा कर्मी या योगी जीव न मिले तो भगवान् ही स्वयं 'ब्रह्मा' एवं 'रुद्र' बनते हैं।

श्री कृष्ण

अवतारी

वयः

स्वरूप

अवतार

चन्द्र की कला

षोडश शक्ति

माधुर्य

ऐश्वर्य

ह्लादिनी

संवित्

सन्धिनि /धाम

प्रकाश भेद

श्री कृष्ण वयः–(रास काल में)

ध्येय वयः- 15 वर्ष 9 माह 7 दिन

प्रकट वयः- 8 वर्ष 1 माह 22 दिन

श्री राधा वयं

ध्येय वयः- 14 वर्ष 2 माह 15 दिन

प्रकट वयः- 6 वर्ष 1 माह 7 दिन

•सम्पूर्ण शास्त्रों का तात्पर्य श्री कृष्ण में ही है–

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयं" भागवत 1.3.28

(यह सावधारणा श्रुति है जो 'प्रकरण श्रुति' से अधिक बलवती होती है)

कृष् धातु का अर्थ- सत्ता एवं आकर्षण है। एवं 'ण' का अर्थ आनंद है। जो सभी वस्तुओं का आश्रय, समन्वय एवं आनंद स्वरूप हो वह कृष्ण है –अर्थात् सदानंद।

स्वरूप - अनन्यापेक्षि चरमरूप 'स्वरूप' है।

क्योंकि श्री कृष्ण विशुद्ध सत्त्वात्मक हैं, तथा देह के साथ उनका 'संयोग संबंध' नहीं है। अतः मध्यमाकार होने पर भी वे ब्रह्म परमात्मा भगवान् हैं। वे नित्य एवं अनंत हैं। जबकि मध्यमाकार वस्तु जन्य होती है, एवं वह अनंत तथा सत्य नहीं हो सकती। श्री कृष्ण की ब्रह्मरुपता इन लीलाओं से प्रकट होती है।

•गोलोक दर्शन प्रसंग में ब्रज वासियों ने कृष्ण को श्रुतियों द्वारा स्तुत देखा।

•श्रीमद् भागवत के श्रुतिस्तुति, त्रिदेवी प्रसंग, महिषीगीत, अवतारचरित्र सभी 'अभ्यास' प्रसंगों का तात्पर्य श्रीकृष्ण के परतत्त्वस्थापन में है।

•तमालश्यामल –त्विषि यशोदास्तनंधये परब्रह्मणि कृष्णशब्दस्य रुढि:योगम् अपहरति- इति=यायात्

•'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहं' यह गीता जी में कहा गया है।

भगवन्नाम कौमुदी - महीघर(गीता 14.27) आनंदमयोऽभ्यासात् (1.1.6), रसो वै स: (तैत्त. 3.2.7.1) एवं गोपाल तोपिनी उप.के आधार पर कृष्ण ही उपास्य सिद्ध होते हैं।

अवतार

तत्त्व का प्रपंचगोचर होना अवतार है।

* अवतार द्वारा कृपालुता एवं माधुर्य की पराकाष्ठा का प्रकाशन होता है। फिर भी तत्त्व अविकारी रहता है।

* भगवान् की परम स्वतंत्रता का प्रकाशन अवतार द्वारा होता है।

श्री कृष्ण (चंद्र) की षोडश-कला–

अमर कोश में 'कृष्ण' एवं 'चन्द्र'पर्यायवाची हैं। चन्द्रकी षोडश कलाऐ निम्न हैं–

अमृता - मानदा - पूषा- तुष्टिः- पुष्टिः -रतिः -धृतिः। दर्शिनी- चद्रिका- कान्तिः- ज्योत्स्ना - श्रीः-प्रीतिः- रंगदा। पूर्णा- पूर्णामृता॥

श्री कृष्ण चन्द्र की कलाए भी षोडश हैं-

"ततो गोप्यः महादेवि! विद्याः याः षोडशः स्मृताः
तासां नामानि ते वक्ष्ये तानि ह्येकमना श्रुणु॥"
"लम्बिनी - चन्द्रिका - कान्ता-क्रूरा -शान्ता -महोदया।
भीषिणी- नन्दिनी-शोका- सुपूर्व विमला (सुविमला) - क्षया।
शुभदा - शोभना - पुण्या हंसस्य (कृष्णस्य) एताः कलाः क्रम
हंस एव मतः कृष्णः कलारुपास्तु ताः स्मृताः॥ ३॥

(सम्पूर्णमण्डला- तासां 'मालिनी' षोडशी कला..)

–स्कंदपुराण-प्रभासखण्ड-गोप्यादित्यमाहात्म्य अध्याय 118/ 4, 5, 10, 16

श्री संकर्षणस्य स्वरूपे अक्रूरेण दृष्टाः षोडश शक्तयः (श्रीमद्भागवत। 10.39.55)– श्रिया (ऐश्वर्य) पुष्ट्या (वल) गिरा(ज्ञान) कान्त्या (श्रीः) कीर्त्या (यश) तुष्ट्या (वैराग्य) इला(भूः) उर्जया (लीला)। विद्यया(मोक्षकारी भक्ति) अविद्यया (जीवमाया) शक्त्या (स्वरूप= ह्लादिनी संधिनी संवित्) मायया(सत्त्व रजः तमः) च निषेवितम्।

माधुर्य्यम्

महेश्वर्यस्य द्योतने वा अद्योतने नरलीलत्व-अनतिक्रमो माधुर्य्यम्

–(रागवर्त्म चन्द्रिका 2/2)

(महेश्वर्य के द्योतन जैसे - पूतना प्राण हारी होने पर भी श्री कृष्ण का स्तन चूषण। उत्तान शायी तीन मास के बालक रूप में चरण प्रहार से महाकठोर शकट असुर

का भंजन। दामबन्धनमें विभुता प्रकट होने पर भी माता यशोदा से भय आदि माधुर्य ही है।

ब्रह्ममोहनलीला में सर्वज्ञता होने पर भी वत्सचारण या (जैसे-दधि- पयः चोरी गोपस्त्री लाम्पटय आदि में मनुष्य लीला का त्याग न करना ही 'माधुर्य' है।

ऐश्वर्य

ऐश्वर्यं तु नरलीला अनपेक्षितत्वे सति ईश्वरत्व आविष्कारः

- (रागवर्त्म चन्द्रिका 214)

(जहाँ नर होता की अपेक्षा न कर लीला शक्ति ईश्वरत्व का आविष्कार करे, वहां 'ऐश्वर्य' कहलाएगा। जैसे देवकी वसुदेव का पूर्व जन्म का स्मरण कराने के लिए चतुर्भुज अद्‌भुत् बालरूप का दर्शन कराना। अथवा अर्जुन को गीता में विश्वरूप का दर्शन कराना आदि)

ऐश्वर्य ज्ञान – वह दशा है, जहां कोई भक्त श्रीकृष्ण को 'यह ईश्वर हैं' –ऐसा जानकर आदर में अपने रागभाव को शिथिल कर दे। जैसे देवकी वसुदेव कहते हैं- 'युवां न नः सुतौ तात! प्रधान पुरुषेश्वरौ'–10.85.18

अर्जुन भी कहते हैं- **"सखेतिमत्वा प्रसमं यदुक्तम्"** (गीता)–11.41

प्रेमीजनों में संयोग में ऐश्वर्य ज्ञान का अभाव -

संयोगस्य शैत्यात् चन्द्रातप तुल्यत्वात् ऐश्वर्य ज्ञानं न सम्यक् अवभासते।
विरहस्य औष्णात् सूर्यातप तुल्यत्वा हृत्कंप आदेः अभावात् तदपि न॥

–रागवर्त्म चंद्रिका ..215

(संयोग में चंद्रिका के समान शैत्य रहता है, अतः ऐश्वर्य ठीक से प्रकाशित नहीं होता विरह में सूर्य की धूप जैसी उष्णता रहती है, अतः ऐश्वर्य जन्य हृतकम्प का अभाव रहता है, वहां भी शुद्ध ऐश्वर्य नहीं है।)

आह्लादिनी शक्ति

•जिस शक्ति से सदा संयुक्त हुए भगवान् स्वयं आनंद रुप हैं एवं अन्यों को

आनंदित करते हैं, उस शक्ति को आह्लादिनी शक्ति कहते हैं।

आनन्द चिन्यय रस प्रतिभाविताभिः
ताभिः स्वरूप निजरूपतया कलाभि
गोलोक एव निवसति अखिलात्म भूतः
गोविन्दम् आदि पुरुषं तमहं भजामि

–ब्र.संहिता

[आनंदात्मक चिन्मय रस से ही प्रकट होने वाली (निर्मित) स्वरूप भूत निज तेज रूपा प्रियाओं के साथ जो सभी की आत्मा गोविन्द श्रीगोलोक (भौम/ दिव्य) में निवास करते हैं उन्हें मैं भजन करता हूं।]

* ह्लादिनी का सार 'मादन' महाभाव है। वे 'श्री राधा 'हैं।

सर्व भावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः
राजते ह्लादिनी सारः श्री राधायां एव यः सदा।

-(उज्जवल नीलमणि:-स्थायी. 219)

संवित्

स्वरूप शक्तेः स्वप्रकाशिका वृत्तिः संविदाख्या

– क्रम संदर्भ 2.9.10

•भगवान् की सभी शक्तियों में जो आत्म-प्रकाशन (ज्ञान) की शक्ति है, वह संवित् है।

•सवित् का सार श्रीकृष्ण का 'भगवत्ता ज्ञान' है। ब्रह्मादिज्ञान सब इसी ज्ञान के परिवार हैं।

चिन्तामणि-प्रकर- सद्मसु, कल्पवृक्ष
लक्षावृत्तेषु सुरभीः अभिपालयन्तम्

लक्ष्मीसहस्र - शत-सभ्रम सेव्यमानम्
गोविन्दम् आदिपुरुषं तमहं भजामि ॥

–(ब्रह्म संहिता)

चिन्तामणि समूह से बने हुए भवनों में कल्पवृक्ष एवं कल्पलताओं से आवृत धाम में गोचारण करते हुए, शतसहस्त्र लक्ष्मी रूपा प्रियाओं द्वारा आदर सहित सेवित उन आदिपुरुष गोविन्द का मैं(ब्रह्मा)भजन करता हूं।

•संधिनी के सार का नाम 'विशुद्ध सत्त्व' है। श्री भगवान् का स्वरूप, श्रृंगार, धाम, परिकर सभी संधिनी से बना होते हैं, त्रिगुणात्मिका माया से नहीं। संधिनी भगवत्तत्त्व से अभिन्न है।

धाम

धाम के अमरकोश में चार अर्थ हैं-
१.देह - श्री भगवान् का स्वरूप ही धाम है अथात् धाम धामी में अभेद है।
२.गेह - धाम बिना लीला संभव नहीं
३.त्विट् - धाम चिन्मय है।
४.प्रभाव - वे प्रेम दाता हैं।

प्रकाश भेद

अनेकत्र प्रकटता रूपस्यैकस्य यैकदा
सर्वथा तत् स्वरूपैव स प्रकाश इतीर्यते

- लघु भागवतामृत (रूप)

1- प्रकाशभेद में भगवान् के अनेक स्वरूप प्रकट होते हैं परन्तु
वे स्थान (अक्षांश देशान्तर), काल (सूर्य के उदय अस्त रात्रि काल) एवं पात्र (सूर्यका उलूक का अदर्शन भेद से भिन्न नहीं है।

2- यह अनेकत्व प्रकटता कायव्यूह (सौभरि कार्तवीर्य आदिवत्) वही है।

3- यह आधार भेद से प्रकाश किरणों का प्रत्यावर्तन होने पर अनेक बिम्बों का प्राकट्य (शीश महल) जैसा भी नहीं है।

4- यह स्वरुपगत है। तप योग के प्रभाव से आगन्तुक नहीं।

5- प्रत्येक प्रकाश पूर्ण एवं सर्वशक्तिमान् है (जैसे द्वारका में श्री कृष्ण का १६ हजार महलों में प्रकाश)

साधन

मीमांसा की विधि
कर्म के ९अंग
अष्टांग योग
वैष्णव समाधि/ ज्ञान में उत्क्रांति
योग द्वारा सिद्धि के सोपान
शौच
मोक्ष के लिए ब्रह्म एवं जीव ज्ञान की आवश्यकता
विद्वत् संन्यास
मोक्ष साधान प्रक्रिया
भाग लक्षणा
अपरोक्ष अनुभूति
मोक्ष के प्रकार
कैवल्य /अपवर्ग
भक्ति ही अपवर्ग है
ज्ञान / भक्ति/ कर्म /विज्ञान की तुलना
अन्तःकरण चतुष्टय (मन बुद्धि चित्त अहं)
बुद्धि की वृत्ति - 7 ख्यातियां
चित्त की वृतियां
मनकी ५ वृत्तियां
जागृत
स्वप्न
सुषुप्ति

मीमांसा:-विधिः / कर्म

अप्राप्त प्रापक: विधि:

अर्थात् जो नैसर्गिक प्राप्त न हो उसका विधान 'विधि' कहलाता है विधि के तीन स्वरूप है–

A -चोदना

B-परिसंख्या

C-निषेध

A-चोदना "ऐसा करो लाभ होगा"। यह दो प्रकार की होती है 1–नित्य एवं 2-नैमैत्तिक

1.नित्यविधि - करने पर प्रत्यक्ष फल का अभाव परन्तु न करने पर दोष (पाप) का कारण हो जैसे 'अहरहः संध्याभुपासीत"

(प्रतिदिन संध्या वंदन करो)

2.नैमैत्तिक विधि –यह तीन प्रकार की होती है–

१नियम २प्रायश्चित्त ३अपवाद

१.नियम – देशकाल पात्र प्राप्त होने पर कर्म का विधान (जैसे पुत्र जन्म पर जातकर्म, सूर्य चंद्र ग्रहणकाल में दान, तीर्थ में श्राद्ध

२.प्रायश्चित – 'कोई पाप बन जाने पर ('तीर्थस्नायी विशुद्ध्यति')

३.अपवाद - पथि शूद्रवदाचरेत्

B–परिसंख्या–तीर्थ स्नान, व्रत, दानादि देश काल पात्र के विचार से मानव की सहज प्रवृतियों में कुछ अनुमति प्रदान करना। जैसे (विवाह सिद्धौव्यवाय:) यदि सदा ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर सकते हो तो विवाहकर फिर शास्त्रानुमोदित 'काम' का सेवन करो

C–निषेध विधिः- चोदना द्वारा जिस कार्य का निषेध किया जा चुका हो उसमें विशेष अवसर पर कुछ ढिलाई जैसे– वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति / सोमवल्ली सेवन में मदिरा का सूंघना आदि।

कर्म के नौ अंग

१.कालो २.देशः ३.क्रिया ४.कर्ता ५.करणं ६.कार्य ७.आगमः ८.ब्रीहि ९.फलम् इति ब्रह्मन्

नवधोक्तः अजया हरिः– सूर्यरथमण्डलवर्णनम्

(12.11.31)

निष्काम कर्म से भगवत् प्राप्ति कीअनुकूलता

वेदोक्तमेव कुर्वाणाः निसंगोऽ र्पितमीश्वरः
नैष्कर्म्य लभते सिद्धिं रोचनार्थां फलश्रुतिः

- भाग. 11.3.46

अतः पुभिः द्विजश्रेष्ठाः वर्णाश्रम वाभागशः
स्वनिष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिः हरितोषणम्

–भाग 1.2.13

मनुष्यों के द्वारा निस्संग होकर वेदोक्त निष्काम कर्म करना एवं उसे भगवत् समर्पित कर देना, ज्ञान (नैष्कर्म्य) की योग्यता, चित्त में उत्पन्न करता है एवं कर्म एवं ज्ञान का फल हरि का संतोष है। कर्म की प्रशंसा तो रोचनार्थ (भैषज्य रोचन) है। जैसे दवा पिलाने के लिए मां बालक को लड्डू दिखाती है।

अष्टांग योग

1 - यम

१- अहिंसा- काय वाणी मन से किसी को दुःख न देना

२- सत्य - काय वाणी मन से के सत्य का आचरण।

३- अस्तेय - काय वाणी मन को सेवा में लगाना।

४- ब्रह्मचर्य - काय वाणी मन: की निर्विकारता।

५- अपरिग्रह - आवश्यकता से अधिक का संग्रह न करना। (यम द्वारा अंत:कर की शुद्धि होती है?)

2- नियम

१- शौच - अंत: बाह्य शुद्धि सुप्रसन्नता एवं एकाग्रता का कारण।

२- संतोष - किसी भी परिस्थिति में संतोष से श्रेष्ठ सुख लाभ।

३- तप - अशुद्धि क्षय से काय एवं इंद्रियों का पाप निग्रह।

४- स्वाध्याय - धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन(इष्ट देवता एवं ध्येय प्राप्ति)।

५- ईश्वर प्रणिधान - (ईश्वर शरणागति) से समाधि सिद्धि होती है।

(नियम द्वारा कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय पर विजय प्राप्त होती है।

3- आसन

(स्थिर होकर सुख पूर्वक बैठना) प्रयत्नशैथिल्य एवं अनन्त समापत्ति (समाधि)

(स्थिर सुखं आसनम् =पा.यो.सूत्र–21-46)

(स्थूल शरीर की शीत उष्ण क्षुत् पिपासा दु:ख सुख पर विजय प्राप्त होती है)

4- प्राणायाम

श्वास एवं प्रश्वाश की गति को रोकना एवं समान करना।

प्राणायाम –रेचक पूरक कुम्भक तीन प्रकार का है। (श्वास - श्वासयो : गति विच्छेद: 21.49)

(इनसे आज्ञान आवरण का भंग होता है।)

5 - प्रत्याहार

(इंद्रियों का विषयों से संबंध छूट जाना) एवं चित्त में इंद्रियों का लीन हो जाना, **(स्व-विषय - असंप्रयोगे चित्त– स्वरुपानुकार:)** यो. सू. साधन-15.4

(इंद्रियों की विषयों से विमुक्ति होती है)

6 - धारणा

चित्त को एक स्थान ईश्वर में बांधना (देशबन्ध: चित्तस्य धारणा– (यो - स् 31)।

भगवत् स्वरूप का समग्र चिंतन "सूक्ष्म धारणा" है। एवं संपूर्ण जगत् में उनके अंगों का आरोप पूर्वक सामान्य चिंतन "स्थूल धारणा" है। धारणा से सिद्धियों की प्राप्ति होती है जो सिद्धि में बाधक (अंतराय) रूपा है।

7 - ध्यान

(ध्येय पदार्थ (ईश्वर) में चित्त की अखंड-धारावाहिकता)

तत्र प्रत्ययैकं तानता (यो-स्-312)

(सवीज ध्यान में मंत्र जप करते हुए भगवान के प्रत्येक अंग का ध्यान) निर्वीज ध्यान में ज्योति का ध्यान।

8 - समाधि

केवल उसी ध्येयपदार्थ मात्र (आत्म तत्त्व) का भास होना।

(तदैव अर्थमात्र निर्भासम्- यो - सं् 313)

1 - सविकल्प समाधि - तत्त्व चिंतन के साथ नाम रूप – गुण की भी प्रतीति। जैसे– मिट्टी का हाथी (मृद् गज:)

2 - निर्विकल्प समाधि - केवल तत्त्व का चिंतन जैसे सर्वं मृद्। निर्विकल्प समाधि में किंचित् मनोवृत्ति रहती है। जैसे स्वच्छ आकाश (मन) में प्रकाश (ब्रह्म) का स्फुरण। परंतु मोक्ष में सूर्य का पूर्ण प्रकाश होता है।

• माधूर्यास्वाद सम्मोह एव समाधि: - सारार्थ-दर्शिनी3.28.33

• ज्ञानियों की उत्क्राति सिद्धि----- 'वासुदेव: सर्वम्'

पहले परब्रह्म में जीवात्मा का दर्शन, फिर चित्त में ब्रह्म का दर्शन (सोऽहम्), फिर द्रष्टा– दृश्य के मध्यं (दर्शन) (इक्षा) का परदा (चित्त वृत्ति) हटा देने पर ब्रह्म की परोक्ष स्फूर्ति निवृत्ति हो जाती है। एवं अपरोक्ष अनुभूति चित् 'शक्ति' से होने लगती है।

परे ब्रह्माणि चात्मानं परं ब्रह्म तथात्मनि

वीक्षमाणो विहाय ईक्षां अस्मात् (देहात्/ चित्त वृते:) उपरराम ह॥

–(भाग. 4.28.42)

वर्तिका (चित्त) का नाश होने पर दर्शन भेद का नाश है, ज्योति (ब्रह्म) का नहीं।

योग द्वारा सिद्धि प्राप्ति के सात सोपान

A•(अकोविद)

1-अज्ञ (अकोविद) –व्यवहारिक सत्ता को ही सत्य मानने वाला व्यक्ति।

2-मुमुक्षु– "प्रतिभासिक सत्ता में स्थित, जो व्यावहारिक सत्ता को 'भ्रम' एवं दु:खात्मक मानता है। ऐसे साधक की दो स्थितियां है-

i) शुभेच्छा –(मैं माया के त्रिताप से मुक्त हो सकूं)

ii) शुभारणा– (एतदर्थ मेरा चित्त शुद्ध हो। चित्त शुद्धि के लिए निष्काम र्कम का करना।

B•(कोविद)

ज्ञान साधन के लिए प्रयत्नशील -

iii) तनुमानसत्व –यह साधन की रूढ़ दशा कहलाती है। (जैसे आदि भरत) यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान।

iv)- सत्वापत्ति – समाधि (सविकल्प)

C•(सूरि)

v) - व्यापिनी –अससक्ति (देहाभिमान की विस्मृति एवं "अहं ब्रह्मास्मि (सोऽहं)" रूप 'अनुभव वाक्यार्थ ' दशा। परन्तु यह भी "बाधन्समानाधिकरण्य" है। यह मोक्ष दशा नहीं है क्योंकि अभी 'अहं' बना हुआ है। यह निर्विकल्प समाधि दशा है।

vi)- शमना –(पदार्थ- अभाविनी)–यह समाधि के बाद व्युत्थान दशा है जिसमें योगी के व्यवहार में भी उपाधि में भी ब्रह्म की भावना रहती है। संस्कार वशात् वह व्यवहार करता रहता है।

D•(ब्रह्मभूत)

vii)- उन्मनी -(तुरीयगा अवस्था)–जिसमें योगी की प्रारब्ध पूर्ति तक उसकी उपाधि बनी रहती है। परन्तु उसे उपाधि का अनुसंधान, यहाँ तक कि उसे अन्न जल की भी अपेक्षा नही रहती। प्रायः यह दशा अधिकतम 21 दिन तक रह सकती है।

E• (मुक्त)

उत्क्रांत सिद्ध होने पर जीव का ब्रह्म में मुख्य समानाधिकरण्य हो जाता है। घटत्व की निवृत्ति उसकी मृत्तिका स्वरूप की प्राप्ति ही है।

शौच–(अंत: एवं बाह्य शुद्धि)

शौचात् स्वांग जुगुप्सा परैः असंसर्गः

सत्त्वशुद्धि- सौमनस्य- एकाग्र- इन्द्रियजय - आत्मदर्शन -योग्यत्वानि

- पा ० योगसूत्र 2 (साधन)। 40-41

अंत: बाह्य शुद्धि से अपने शरीर के अंगों से घृणा पैदा होती है। दूसरों का स्पर्श करने की इच्छा नहीं होगी। (तथा) शौच से चित्त शुद्धि, सुप्रसन्नता, एकाग्रता

इंद्रियजय, आत्म साक्षात्कार की योग्यता यह पांच फल प्राप्त होते हैं। मुख्य फल तो आत्मसाक्षात्कार ही है।

मोक्ष के लिए जीव एवं ब्रह्म दोनों के ज्ञान की आवश्यकता है--

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्
एवं समीक्षन् आत्मानं आत्मनि आधाय निष्कले

श्री शुक: परीक्षितम् 12.6.11

"तत्त्व मसि" जैसे वाक्यों से जीव भाव का निषेध होने पर ब्रह्म भाव का भी निषेध

'सह प्रवृत्ति- निवृत्ति सिद्धांत' से न हो जाए; इसलिए जीव एवं ईश्वर दोनों का चिंतन आवश्यक है। "मैं जीव ब्रह्म का तेज अंश (शक्ति) हूं; शक्ति शक्तिमान के अभेद से मैं ब्रह्म भी कहलाता हूं"–ऐसा विचार कर निष्कल (माया संपर्क रहित) ब्रह्म में (आत्मनि) साधक जब अपने मन चित्त (आत्मानं) को लीन कर दे, तब ब्रह्म एवं जीवात्मा (दोनों ही नित्य) बने रहेंगे एवं देह भाव लीन हो जाएगा।

मोक्ष में चित्त (उपाधि) का लय तो अभीष्ट, है परंतु 'आत्मा' का नहीं।

अर्थे हि अविद्यमाने ऽ पि संसृतिः न निवर्तते।
मनसा लिंग रूपेण स्वप्ने विचरतो यथा॥

–(नारदः प्राचीन बहिर्षम्–भाग. 4.29.35)

[जगत् के सुख दुःख (अर्थे) मिथ्याभूत हैं (अविद्यमाने ऽपि) फिर भी जीव को संसार बंधन (संसृति) निवृत्त नहीं हो सकती। जब तक चित्त रूपी लिंगशरीर विद्यमान है, तब तक संसार चलता रहेगा। जैसे स्वप्न में सर्प आदि का भय जागे बिना दूर नहीं होता।]

विद्वत् सन्यास -

यो विद्या श्रुत सम्पन्नः आत्मवान् नानुमानिकः
मायामात्रम् इदं ज्ञात्वा ज्ञानं च यदि सन्यसेत्

श्री कृष्णः उद्धवं –भाग.11.19.1

पहले विद्या उदय के पूर्व साधक को शास्त्र एवं तर्क (श्रुत) से सम्पन्न होना चाहिए। फिर शास्त्र आदि के आधार पर परोक्षज्ञान प्राप्त करे (आत्मवान्= विद्यावान) फिर अनुमान का त्याग कर अपरोक्ष ज्ञानी (न अनुमानकः) बने। इस जगत् को (इदं) मायामात्र जानकर पूर्व प्राप्त परोक्ष ज्ञान (शास्त्र एवं तर्क के ज्ञान) को अपरोक्ष ज्ञान के लिए त्याग दें। इसे ही विद्वत् सन्यास कहते हैं (श्रीधरी)।

विद्या

ज्ञान का अनुभवगम्य स्वरूप विद्या है।

बन्ध का कष्ट देह को है। आत्मा को नहीं।

•ज्ञान चित्तवृत्ति में व्याप्त है; फल (सायुज्य)में व्याप्त नहीं। वहाँ 'स्वरूप मात्र' ज्ञान मात्र बचता है।

मोक्ष साधन की प्रक्रिया (ज्ञान मार्ग) के पांच सोपान हैं–

A –अध्यारोप चिंतन–पंचकोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोवय, विज्ञानमय, आनंदमय का ब्रह्म में अध्यारोप एवं ब्रह्म को शरीरी मानना)

B– अपवाद – अध्यारोप (वस्तु में अवस्तु के आरोप) को हटाना।

C–तत्वाभ्यास –, 'तत्वमसि' इत्यादि वाक्यों द्वारा जीव ईश्वर में विसद्ध का परिहार एवं जीव ब्रह्म की एकता का स्थापन।

D–अनुभव वाक्यार्थ – 'अहं ब्रह्मास्मि' इस अंतःकरण वृत्ति में स्थिति। जिससे दीप शिखा द्वारा अज्ञान अंधकार एवं अधिवत्ती (अर्थात् चित्तवृत्ति का भी नाश)। जैसे सूर्य के सामने दीपक अधिभूत हो जाता है। उसी प्रकार सोऽहम् वृत्ति भी नष्ट हो जाती है।

E–अपरोक्ष अनुभूति – ब्रह्म सायुज्य। मोक्ष किसी वस्तु का अपूर्व जनन नहीं है, बल्कि वह स्वरूप की प्राप्ति है।

मोक्ष साधन

* मुख्य साधन-- श्रवण (श्रद्धा पूर्वक) मनन (युक्ति तर्क पूवक) एवं निदिध्यासन (बार बार एकाग्र होना) (निष्ठा पूवक)।

विजातीय प्रत्यय रहित सजातीय (अद्वय वस्तु)

प्रत्यय प्रवाहः निदिध्यासनम्।

•गौण साधन --

1 - नित्यानित्य वस्तुविवेक (गुरु शरणागति पूर्वक)

2 - इहामुत्र फलभोग- त्याग (निष्काम कर्म -चित्त शुद्धि)

3 - 1.शम (ज्ञानेन्द्रिय)

2.दम (कर्मेन्द्रिय)

3.तितिक्षा (स्थूल शरीर)

4.उपरति (मन)

5.समाधान (चित्तवृत्तिनिरोध)

6.श्रद्धा (भक्ति)

4 - मुमुक्षा– (सायुज्य मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा)

यद्वा --ईश्वर प्राणिधानाद् वा–(पा० योग सुत्र ाणि समाधि 23)

सांख्य योगां च वैराग्यं, तपो भक्तिश्च च केशवे।

पंचपर्वैव विद्या सा तया मुक्तिः न चान्यथा॥

भाग लक्षणा

ब्रह्म पदार्थ से अतिरिक्त प्रतीयमान द्वैत को हटाने के लिए दो पदार्थों में कुछ भाग का त्याग किया जाय एवं कुछ को गृहण कर लिया जाय। जैसे –

'सोऽयं देवदन्त' में तत्काल तद्देशं विशिष्टताएवं एतत् काल एतत् देश विशिष्टता का तो त्यागकर एवं 'देवदत्त'अंश का गृहण होता है। यह जहत् अजहत् (भाग) लक्षणा है। इससे ब्रह्म के परिच्छेदत्व, परोक्षत्व एवं शून्यत्व का निषेध कर तत्त्व का गृहण हो जाता है।

अपरोक्षानुभूति

(आत्मा की स्वयं प्रकाश आनंदानुभूति)

चित्त जब आत्माकारता धारण कर लेने पर, तब आत्मा ही स्वयं ही चित् स्वरूप द्वारा निजआनंद का भोग्य रूप में अनुभव करे, वह 'अपरोक्ष -अनुभूति' है।

अपरोक्ष -अनुभूति की कुछ विशेषताएं है -

•ज्ञान वृत्तिव्याप्त है, 'फल व्याप्त' नहीं है। अतः निम्न वर्णित सभी अनुभूतियां 'द्वैत' कोटि की हैं।

•सत्यं ज्ञानं अनंतम् ब्रह्म (वाणी एवं बुद्धि द्वारा प्राप्त अनुभूति)

•सर्वं खलु इदं ब्रह्म (वाणी एवं बुद्धि द्वारा प्राप्त अनुभूति)

•तत्त्वमसि (अभी 'त्वम्' का बुद्धि द्वारा भोग हो रहा है।)

•अहम् ब्रह्मास्मि (यह बाध समानाधिकरण्य है यहां भी 'अहं' का ज्ञान बना हुआ है) अतः इन सभी अनुभूतियों में कोई भी मुख्य अपरोक्ष अनुभूति नहीं है।

•जीवमुक्त दशा में भी चित्त रूपा (उपाधि) बनी रहती है, परंतु उनमें मल (५ क्लेश= अविद्या, अस्मिता, राग, द्वैष, अभिनिवेश)–क्रियाशील नहीं रहते।

कोई चंचलता नहीं रहती। तैलधारावत् चित्त ब्रह्म में ही स्थित रहता है।

चित्त उस भुने हुए चने के समान हो जाता है, जो भूख को शान्त तो करेगा परन्तु बीज का कार्य नहीं करेगा। (संसार बंधन नहीं देगा।) परन्तु यह भी अपरोक्ष अनुभूति नहीं है। यहाँ 'बाध समानाधिकरण्य' अवस्था है। जब कि सायुज्य की स्थिति में चित्त रूपी उपाधि का भी लय हो जाता है। यही मुख्य समानाधिकरण्य (सायुज्य) होता है। यही मुख्य अपरोक्ष अनुभव है। (अज्ञान निवृत्ति के लिए चित्त रूपी दीपक की बत्ती की आवश्यकता रहती है।) सूर्य के नेत्र, दृश्य वस्तु एवं प्रकाशक की नहीं।

•तत् पदार्थ-(ब्रह्म) को केन्द्र मानकर ब्रह्म और उसकी स्वरूप शक्ति से भिन्न शेष सभी शक्तियां जीव -जगत् का 'अपवाद' हो जाता है।

अतत् व्यावृति

(नेति -नेति) करते हुए अभिन्नरस ब्रह्म (तत्) का चि=तन भी चित्तवृतिव्याप्त ज्ञान ही है। जो निर्विकल्प समाधि रूप है। इसमें भी परोक्ष ज्ञान का अंश विद्यमान है। **'अतद्व्या वृत्ति रूप ज्ञान'**।

स्व पर विरोधी रूप होकर, जहां द्वैत को नष्ट करता है, वहाँ अधिष्ठान रूप चित्त वृत्ति को भी नष्ट कर देता है। तब चित् (आत्मा) अभिन्न कर्ता कर्म बनकर स्वयं ही स्वयं का आत्मानुभव करती है। जैसे दिये की लौ अंधकार को भी खाती है, एवं अधिष्ठान बत्ती (चित्त वृत्ति) को भी जला डालती है। चित्तवृत्ति के लय हो जाने पर ब्रह्म स्वयं प्रकाशित होता है– यही मुख्य अपरोक्षानुभूति है।

•'सोऽहम' में अहं=चिदाभास जीव बना हुआ है। यह चिदाभास भी एक 'विद्रुत् काय'(क्षेत्र) ही है। ज्ञान वृत्ति व्याप्त है, फल व्याप्त नहीं। अभिव्यक्त सुख 'क्षेत्र' कहलाता है, जबकि अभिव्यंग्य सुख 'स्वरूप' कहलाता है। स्वरूप का साक्षात्कार अपरोक्ष अनुभूति है। वृत्ति व्याप्य अवस्था में ज्ञान मन का विषय है। अतः **'मनसैवानु द्रष्टव्य'** एवं **'यत् मनसा न मनुते'** दोनों श्रुतियों में विरोध नहीं है।

फल व्याप्यत्व मेवास्य (ज्ञानस्य) शास्त्र कृद्भिः निवारितम्

ब्रह्मणि अज्ञान नाशाय वृत्ति व्याप्ति:अपेक्षिता

स्वयं प्रकाश रूप त्वात् नाभास: उपयुज्यते

–विधारण्य स्वामी पंचदशी

मोक्ष

मुक्तिः हित्वाऽन्यथा रूपं स्वरूपे च व्यवस्थिति:

–भाग•2.10.1

'मैं देह प्रकृति हूं', इस भ्रम का त्याग कर आत्म -स्वरूप में स्थिति को मुक्ति कहते हैं।

मुक्ति के छ:भेद

1 - सायुज्य= "अविभागेन दृष्टत्वात् (ब्र .स् .4-4-4)
(ब्रह्म में अविभाग रूप में स्थित होना)

2 - सालोक्य - "ब्राह्मेण जैमिनी उप -न्यासादिभ्यश्च (ब्र -स् 4-4-5)
(जैमिनी के मत में तेजोमय स्वरूप से ब्रह्म की निकटता)

3 - सारूप्य - "चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वात् औडलोमि: ॥"(ब्र. स्. 4-4-6)
(चिन्मात्र स्वरूप से बैकुंठ में रहना)

4 - सामीप्य -" एवमपि उपन्यासात् पूर्वभावात् अविरोध: वादरायण: - (ब्र.सू .4-4-7)
(पूर्व वर्णित सालोक्य सारूप्य सहित ब्रह्म के निकट स्थिति)

5 - सार्ष्टि - जगत् व्यापारं वर्जप्रकरणात अंसन्निहितत्वात् (ब्र .स् .4-4-17)
केवल सृष्टि पालन संहार रूच कार्यों को छोड़कर वैकुण्ठ के सर्व सुख प्राप्त है परन्तु उनमें अभिनिवेश नहीं रहता।

6 - सेवा-सुख (पार्षदत्व) सम्पद्याविर्भाव: स्वेन शब्दात् (ब्र. स्. 4-4-22)

(पार्षद तनु प्राप्त कर सेवा सुख प्राप्ति करना)

माधुर्य्यास्वाद सम्मोहःएव समाधिः

–(सारार्थ दर्शिनी विश्वनाथ चक्रवर्ती–भाग. 3.28.3)

पुरूषार्थ शून्यानाम् गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यम्।

स्वरूप प्रतिष्ठा वा चित्ति शक्तिः।

(पातंजल योग सूत्र- कैवल्य 34)

सत्व रजः तम : तीन गुण प्रयोजन शून्य हो जाय, एवं वे अपने कारण प्रकृति में विलय हो जाय यही कैवल्य है।

कैवल्य का दूसरा लक्षण हैं

जीवात्मा (चित्ति शक्ति) का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना।

कैवल्य

तद अभावात् संयोगाभावो हानं। तद् हरोः कैवल्यम्

–पातं•योगसूत्र–25

जीवात्मा का (हरोः) उस अविद्या से अभाव हो जाने पर पहले जड़ पदार्थ के साथ मन के संयोग का अभाव (संयोगाभावः) होगा तब प्रकृति का संपूर्ण त्याग (तत् हानं) होना ही कैवल्य है।

कैवल्य का उपाय

विवेकख्यातिः अविप्लवा हानोपायः

–(पा.योग.सू. 21 26)

[प्रकृति से सम्बन्ध तोड़ने का उपाय (हानोपायः) यही है कि– अखण्ड (अविप्लवा) आत्मा एवं अनात्मा का विवेक ज्ञान (ख्याति) रखा जाये]

अपवर्ग

द्वंद्वातीत स्थिति (गति की सराहना स्थिति में है)

('पुरुष' पुरुष रूप में रहे देह रूप में नहीं)

•उपाधि का अपवाद एवं संसार की निवृत्ति ये ही तत्त्व प्राप्ति नहीं है।

'उपास्य' तो ब्रह्म। भगवान् की प्राप्ति ही है। जैसे 'घटाभावत्वं भूतलं' यह पृथ्वी का लक्षण नहीं है। 'गन्धवती पृथ्वी' ही मुख्य लक्षण है। इसी प्रकार 'आनंद' की भाव रूप अवस्था 'मोक्ष' है।

यथावर्ण विधानानाम् अपवर्गः चापि भवति।

योऽसौ भगवति सर्व-भूतात्मनि अनात्म्ये अनिरुक्ते अनिलयने परमात्मनि

वासुदेवे अनन्य निमित्त भक्तियोग लक्षणो।

नानागति निमित्त अविद्या-ग्रंथिरंधन द्वारेण।

यदा हि महापुरुष पुरुष प्रसंगः।

–(भाग.5.19.20)

कर्म /ज्ञान /भक्ति /विज्ञान की तुलना

यथा दुग्ध सेचनेन चम्पक बीजः जात वीर्यो भवति

तथा ज्ञानेन भक्तिः सुदीप्ता भवति

–(सारार्थ दर्शिनी–विश्वनाथ चक्र. 11.13.2)

जैसे दुध से सिंचन करने पर चंपक वृक्ष सुंदर पुष्पित होता है, इस प्रकार ज्ञान और वैराग्य से भक्ति सुदीप्ता होती है।

•कर्म योग- सात्त्विकता की वृद्धि कर भक्ति धर्म की वृद्धि में सहायक होना है (यह परतत्त्व का दूरस्थ दर्शन है)।

•ज्ञान योग- बीज का छिलका निकाल देने पर 'कर्म विपाक' से मुक्ति है। (यह परतत्त्व का निर्निमेष दर्शन है)

•भक्ति योग- बीज का भर्जन या काथ कर लेना (10.22.26) है

(यह परतत्व का सकटाक्ष दर्शन है)

•ज्ञान - विवेक दृष्टि से दृश्यमान पदार्थों में एकत्व का परोक्ष दर्शन (राम से सब, राम ही सब, राम में सब)

•विज्ञान–अनुभव दृष्टि से दृश्यमान पदार्थों में उपाधि का निरासकर अपरोक्ष एकत्व दर्शन है। (अविप्लव विवेकख्याति मोक्षः योग)।

•भक्ति –निस्वार्थ राग दृष्टि से दृश्यमान सभी पदार्थों में 'सेवक सेव्य भाव' का दर्शन (राम के निमित्त सब यह भाव)

अंतःकरण चतुष्टय

मन —

लक्षण – संकल्प विकल्पकात्मकं मनः

आधिभूत –सात्विक (वैकारिक) अहम्

अध्यात्म – मन (इंद्रिय)

अधिदेव –चंद्र /अनिरुद्ध

बुद्धि—

लक्षण – निर्णयात्मिका 'बुद्धि'

अधिभूत –राजस (तेजस) अहं

अध्यात्म – बुद्धि (इंद्रिय)

अधिदेव – ब्रह्मा /प्रद्युमन

चित्त —

लक्षण – स्वार्थानुसंधान -गुणेन चित्तम् (विवेक चूड़ामणि)

अपने इष्ट का / अथवा प्रयोजनीय पदार्थ का अनुसंधान करने वाली इन्द्रिय चित्त है।

अधिभूत –महत् (शुद्ध सत्व=वैकुण्ठ)

अध्यात्म – चित्त

अधिदेव – शम्भू /क्षेत्रज्ञ /वासुदेव

अहंकार —

लक्षण –अत्रभिमानात् अहमित्यहं कृतिः (विवेक- चूड़ामणि श्री शंकराचार्य)

अधिभूत – प्रकृति

अध्यात्मिक – मन

अधिदेव – रुद्र/ संकर्षण

स्मृति – पूर्वानुभव का मानसिक प्रत्यक्ष

कुछ प्रचलित शब्दों के अर्थ–

मेधावी—शीघ्र ही विद्या को ग्रहण करने वाला।

सूक्ष्मधी—क्रिया के परिणाम का पूर्वानुमान कर लेने वाला।

प्रतिभावान्—नव नवो -मेषि ज्ञान वाला।

विदग्ध—कला- विलास में कुशल। चतुर— एकसाथ कई कार्यों का समाधान करने वाला।

दक्ष —दुष्कर कार्य को शीघ्र कर लेने वाला।

वशी—जितेंद्रिय।

स्थिर— फलप्राप्ति तक प्रयत्नशील।

दान्त—दुःसह कष्ट को भी सहन करने में समर्थ।

गम्भीर—जिसके आशा को समझ पाना कठिन हो।

घृतिमान—क्षोभ के कारण होने पर भी न घबराने वाला।

सम—राग द्वेष से विमुक्त।

शूर—युद्ध में उत्साही।

प्रतापी—शत्रु को भयभीत कर देने वाला।

कीर्तिमान—सद्गुणों के लिए विख्यात।

बुद्धि की दो वृत्तीयां हैं -

(1) विज्ञान -(वस्तु के स्वरूप का स्फुरण)

(2) इंद्रिय अनुग्रह (जिससे इंद्रिय ठीक कार्य कर सके)। इन दो वृत्तियों के अतिरिक्त बुद्धि की पांच वृत्तीयां अतिरिक्त हैं–जो 'विज्ञान' में सहायक हैं

१-संशय

२-विपयर्सि (उल्टा अर्थ निकालना)

३-निश्चय

४-स्मृति

५- स्वाप (निद्रा) इनसे द्रव्य स्फुरण (विज्ञान) के छः स्वरूप होते हैं।

निश्चय के छः स्वरूप

(1)सत् ख्याति (जगत् सत्य है) सत्कार्यवाद -सांख्य

(2)असत् ख्याति (जगत् असत् (शून्य) है)- बौद्ध

(3)अन्यथा ख्याति (जगत् मिथ्या हैं) केवला द्वैत

(4)सदसत् ख्याति (जगत् सत् होते हुए भी परिणामी है; अनिर्वचनीय) वैष्णव सिद्धांत

(5)अख्याति- (मोक्ष एवं प्रलय काल में जगत् की प्रतीति नहीं होती, आत्मा भी जड़वत हो जाती है) प्रभाकर यीमासंक

(6) आत्मख्याती - (जीवात्मा के सच्चिदानन्द रूप का बोध) योग दर्शन

चित्त वृत्ति के चार कर्म

1.मैत्री (पुण्यात्माओं के प्रति मैत्री भाव)

2 .करुणा (दु:खी जनों के प्रति करुणा)

3.मुदिता (किसी को सुखी देखकर उनका अनुमोदन)

4.उपेक्षा (पापी एवं पाप कर्म के प्रति उपेक्षा)

पंच क्लेश

1–अविद्या –अनित्य -अशुचि - दु:ख प्रद अनात्म = जड़ पदार्थों को नित्य शुचि एवं सुख रूप मानना अविद्या है। अर्थात् देहात्मबुद्धिः।

अनित्य -आशुचि- दु:ख -अनात्मसु नित्य- शुचि- सुख- आत्मख्याति: अविद्या–पतंजलि योग सूत्र साधन/5

2–अस्मिता

"दृक- दर्शनशक्त्यो: एकात्मता एव अस्मिता"–पातं. योगसूत्र 216)

दृष्टा (पुरुष) एवं दर्शन कराने वाली मन इंद्रिय शक्तियों की एकात्मता अहंकार कहलाती है)

3–राग: –"(सुखानुशयी राग:)" –(पातं.- योगसूत्र 217)(सुख देने वाले पदार्थों में आसक्ति राग कहलाती है)

4–द्वेष: –दु:खानुशयी द्वेष:– (पा.योग सूत्र 218)

(दु:ख देने वाले पदार्थों में क्रोध रूपा प्रवृत्ति द्वेष है)

5–अभिनवेश–स्वरसवाही विदुषोऽपी तथा रुढो अभिनिवेश: (पा. योगसूत्र 219)

(अपने स्वभाव के कारण सहज बहने वाली, जीवित रहने की इच्छा अभिनिवेश है। यह विद्वानों में भी अज्ञानी के समान प्राप्त होती है।)

जागृत

• शरीर में सत्त्व गुण की अधिकता "जागृत" दशा है।

• शब्दादि विषयों को प्रत्यक्ष में प्राप्त कर स्थूल शरीर के माध्यम से जीवात्मा को सुख की अनुभूति करे, उसे बुद्धि की 'जागृत' अवस्था कहते हैं।

• इस समयन्नमय देह से आत्मा तादात्म्यापन्न रहती है, ऐसी आत्मा भी अन्नमय है।

• जागृत का सुख परम सुख नहीं है। क्योंकि हम सोना भी चाहते हैं। परंतु विषयों के भोग की वासना लेकर सोते हैं।

स्वप्न

•जब तमोगुण की अधिकता से निद्रा होती है, परंतु रजोगुण की प्रबलता से वासनाएं मन में प्रगल्भ हो जाती है।

•मन की यह विशेषता है कि वह जागृत में भी दूर जा सकता है, वह महाबली है एवं अनेक रूप धारण कर सकता है, वही मन देह दैहिक के अनेक स्वप्निक रूप धारण कर विषयों के स्वप्न में भोगता है।

सुषुप्ति

तमोगुण की वृद्धि से स्थूल, सूक्ष्म शरीर, एवं चित्त मन बुद्धि एवं अहं सभी प्राणापन्न हो जाए तो वही बुद्धि की 'सुषुप्ति' अवस्था है। परंतु चिद्रूप मे (तटस्थता शक्ति) जीव 'स्वाप' एवं जागरण दोनों में अनुगत रहता है।

•सुषुप्ति के समय आत्मा का आनंद 'स्वरूप-कोटि' का ही है; 'भोग्य कोटि' का नहीं। सुषुप्ति में आत्मा के साथ अवधारणात्मक चित्त बना रहता है; स्मरणात्मक नहीं। अतः आत्मा निज सुख स्वरूप की भी साक्षी रहती है एवं विषयों के अभाव की भी साक्षी होती है। जैसा कि जगने पर अनुभव होता है -"सुखमहं अस्वाप्सम् न किंचित् अवेदिषम्"।

•क्योंकि हम जागने की वासना लेकर ही सोते हैं अतः सुषिप्त का सुख भी 'अविद्या' मलिन ही है।

सुषुप्ति कार्य कोटि वाले अहं से अतीत भूमिका है। वहां संस्कार रूप में अज्ञान रहता है परंतु आत्मा जागृत स्वप्न की तरह सुषुप्ति में भी अनुगत रहती है। चित्त में "त" का द्वित्व ही अध्यास है। मोक्ष में उसकी निवृत्ति होती है जबकि वासना की अनिवृत्ति से सुषुप्ति में 'अवधारणा कोटि' का चित्त बना रहता है। जो 'मलिन चित्' ही है।

भक्ति

भक्ति –स्वरूप- परिभाषा

हित/ पुष्टि

कृपा का स्वरूप

भावभक्ति

साधन भक्ति

प्रेमाभक्ति

भक्ति द्वारा साधक देह मन की निर्गुणता

विरह एवं मिलन

भक्ति के सोपान

भाव भक्ति के अनुभाव

भक्ति के भेद –शुद्ध, गौणी, मिश्रा, कला

जप

भक्ति संपर्क से अप्राकृतता रागानुगा भक्ति साधन के अंग

नित्यविहार (मिलौनी)

सखी, सहचरी, सहेली, मंजरी (भावोल्लास), गोपी

सखी के पांच भेद

भक्ति

•ह्लादिनीसार (मादन) समवेत संवित् (ज्ञान)सारांश है।

•वह न तो मूल प्रकृति है, न महत् - तत्व का विकार।

वह निर्गुणा है एवं भगवान् की स्वरूपशक्ति (चित्तशक्ति) है।

कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत्,
प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥

–(भाग. 11.25.24)

•भक्ति द्वारा अपरोक्ष ब्रह्मानुभूति संभव है। ज्ञान द्वारा नहीं।

तस्य(ब्रह्मण:) निर्गुणत्वात् निर्गुणाया: भक्ते:एव अपरोक्षानुमते सामर्थ्यं।
ज्ञानरूपं चित्तवृत्ति विषयत्वात् प्राकृतत्वम् ॥

–सारार्थ दर्शिनी 2.9.33

[ब्रह्म निर्गुण है अतः निर्गुणा भक्ति ही ब्रह्म के अपरोक्ष अनुमान में समर्थ है। ज्ञान रूप साधन चित्तवृत्ति का विषय होने से सात्विक (प्राकृत) है।

हित (धा+ क्त:)

धा= धारणे, पोषणे।

अर्थात्- बहि: पुर (जगत्) मध्यपुर (वैकुण्ठ) एवं अंत:पुरों (गोलोक निकुंज) की स्थिति जिस पर टिकी हो। अर्थात् उन्हें धारण करने वाला तत्त्व 'हित' कहलाता है अथवा जो आनंद नामक बल द्वारा तीनों पुरों का पोषण करे, उसी आनंद का आभास ही जगत् का भी सुख है।

परिभाषा

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञान कर्मादि अनावृतं
आनुकूलेन कृष्णानुशीलनं भक्ति: उत्तमा ॥

– भक्ति रसा.सि.(श्री रूप गो.) 1.1. 11)

अन्याभिलाषा शून्य, ज्ञान एवं कर्म के फलों की प्राप्ति हो जाने पर कभी न छूटने वाली, कृष्ण की सुखकामना से की गई श्री कृष्ण संबंधी सभी कायिक वाचिक मानसिक चेष्टाऐं एवं भाव (अनुशीलनं) उत्तमा भक्ति है।

•पुष्टि पोषणं तदनुग्रह 2-10

(कृपा को ही पुष्टि कहते हैं)

ज्ञान एवं भक्ति की एकरूपता

ज्ञान– परतत्त्व का अखण्डाकार रूप में अनुसंधान है। वह मानो प्रिय का निर्निमेष दर्शन है।

भक्तिः– परतत्त्व का चिद् विग्रहयुक्त विचित्र लीला रस से युक्त अनुसंधान है। मानो वह सकटाक्ष दर्शन है।

गीता भूषण भाष्य की भूमिका (श्रीबलदेव.)

•कर्म 'इदं (जगत्) मूलक'होता है। ज्ञान निर्विशेष अखण्डाकार तत्त्वमूलक होता है। एवं भक्ति चिद्विग्रह विशिष्ट मूला होती है।

अतः भक्त एवं ज्ञानी दोनों के लिए "ज्ञानी" शब्द का प्रयोग होता है।

चतुर्विधा भजन्ते यां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन!
आर्तो जिज्ञासु अर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

–गी. 7/16

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति
तस्याह न प्रणश्यामि (दूरी भवामि) स च मे न प्रणश्यति ॥

–गीता- 6/30

•भक्त एवं ज्ञानी के मुख्य लक्षण एक ही होते हैं –

सर्वभूतेषु यः पश्येत् भगवद् भावम् आत्मनः
भूतानि च भगवति एष भागवतोत्तम ॥

–(भाग 11-2-45)

जैसे गोपियां श्री कृष्ण का पता वृक्ष लता से पूछती है। एवं महिषियां कुररी पक्षी आदि में अपने भाव का दर्शन करती हैं। (अध्याय 34 वां/90 वां)

कृपा

•पर दुःखासहो यस्तु करुणः सनिगद्यते -भ. र.सि. 2.1.132

(दूसरे के दुःख को सहन न करना करुणा (कृपा) कहलाती है)

स्वमातुः स्विन्नगात्रायाः विस्रस्त कवर स्रजः
दृष्टा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत् स्वबंधने

- 10.9.18

श्रीकृष्ण ने मां यशोदा को पसीने में भींगी हुई, शिथिल वेणी वाली देखा तो उनके परिश्रम के देखकर वे कृपा से स्वबंधन में बंध गए।

परिश्रम

1- परिश्रम भगवान् की कृपा वृष्टि का आकर्षण करने वाली क्यारी है।

जैसे क्यारी बनाकर पहाड़ पर भी खेती की जा सकती है।

2- परिश्रम कृपारूपी मानसून को आकर्षित करने वाला घटक है।

3-परिश्रम की मात्रा कृपा प्राप्ति का कारण नहीं है। बल्कि व्याकुलता ही कारण है। फिर भी साधक को नियामाग्रह रखना चाहिए।

4.नियम के बहाने भजन बनता है। नियमरक्षा भी कृपा ही है।

कृपा

1.कृपा परम स्वतंत्र है वह संख्यापूर्ति (जपसंख्या) की अपेक्षा नहीं करती (यदृच्छा)।

2.फिर भी पक्षपात दोष से बचने के लिए भगवान् परिश्रम की अपेक्षा रखते हैं।

3.कृपा का धन भगवान् को सुखकर है, क्योंकि स्वबन्धन सुखकर होता है एवं परबंधन दण्डात्मक होता है।

4.भगवत् कृपा सन्त कृपा के वाहन पर बैठकर प्रवृत्त होती है।

5.कृपा सार्व कालिक है– १.प्रवर्तनदशा। २.साधन दशा। ३.सिद्धिदशा। ४. मुक्त दशा।

6.संतों में संसारी जनों की दुरवस्था देख कर कृपा स्वतः उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी संत-सेवा की भी आवश्यकता नहीं होती – जैसे नलकूवर पर श्री नारद की कृपा।

भावभक्ति

शुध्दसत्त्व विशेषात्मा प्रेम सूर्यांशु साम्यभाक्
रुचिभि: चित्त मासृण्य कृदसौ भाव उच्यते।

–भ.र.सि. 1.3.1

[प्रीति आह्लादिनी एवं सवित् की सार रूपा है। वह जो नित्य प्रिय जानों में रहती है, ऐसी प्रीति ही भाव भक्ति का स्वरूप (आत्मा) है। ऐसे प्रेम को प्राप्त करने की अभिलाषा (रुचिभिः) से जब चित्त द्रवीभूत हो जाए, उसे भाव कहते हैं।]

साधनभक्ति

कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा
नित्य सिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥

–भ.र.सि. 1.2.2

(इन्द्रियों के द्वारा जिसको साध्य बनाया जाय, उसका साध्य भावभक्ति हो, भगवत् शक्ति की वृत्ति होने से जो भावभक्ति नित्य सिद्ध है। उसका हृदय में प्राकट्य ही साध्यता है।)

प्रेमा भक्ति

सम्यक् मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयांकित:
भाव स एव सान्द्रात्मा बुधै: प्रेमा निगद्यते॥

–(भ.र.सि.1.41)

प्रेमाभक्ति में पूर्व अवस्था "भाव" की अपेक्षा चित्त अधिक द्रवीभूत होता है।

जहां भाव आदि पूर्व अवस्थाओं का त्याग भी नहीं होता है, फिर भी भाव ही कुछ सघन होकर प्रकट हो, उसे बुधजन 'प्रेम' कहते हैं। यहां सांख्य की तरह कारण स्वरूप का त्याग कर नया रूप धारण करना नहीं है।

अनन्य ममता विष्णौ ममता प्रेम संगता
भक्तिः इत्युच्यते भीष्म प्रह्लादोद्धव नारदैः॥

–(पांचरात्र)

(अनन्यभाव पूर्वक श्री विष्णु में प्रेम युक्त ममता ही विद्वानों के मत में प्रेम है।)

साधन भक्ति, भाव भक्ति, प्रेमा भक्ति में स्वरूप भेद नहीं है। परिपाक भेद है– जैसे कच्चे एवं पके आम में स्वरूप भेद नहीं है। अथवा बाल्य पौगण्ड किशोर यौवन में 'हेतु हेतुमत् भाव' तो है परन्तु 'स्वरूप भेद' नहीं है।

"सवै पुंसां परो धर्मः यतो भक्तिः अधोक्षजे
अहैतुकी अप्रतिहता ययात्मा संप्रसीददति॥

–(1.2.6)

भक्ति द्वारा प्राकृत इंद्रिय/देह में निर्गुणता की स्थापना-

तमेव परमात्मानं जार बुद्धचापि संगताः
जहुः गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीण बन्धनाः

–(10.29.11)

यहां यह विवेक है– गुरु शरणागति दशा के क्षण से ही भक्तों के श्रोतृ आदि में शुद्ध भक्ति प्रवेश करती है। वह तभी "निर्गुणोमदपाश्रयः" इस नियम के अनुसार भक्त में एक निर्गुण शरीर स्थापित कर देती है। तब वह इन्हीं कानों से व्यावहारिक शब्दों को भी सुनता है एवं निर्गुण देह से मानसी सेवा भी करता है। संपूर्ण प्रेम उत्पन्न होने पर शरीर में प्रकृतता का अंश नष्ट हो जाता है एवं श्री ध्रुव की तरह

उसी देह से वैकुंठ जा सकता है। फिर भी कभी-कभी भक्तियोग के रहस्य की रक्षा के लिए गुरुजनों (भक्तों) का देहपात भी भक्ति प्रदर्शित करा देती है।

–(देखों सारार्थ दर्शिनी (विश्वनाथ चक्र.) 10-29-1)

कभी-कभी भक्तों के भजन में बाधा आने पर भी उनमें पूर्व की अपेक्षा शतगुण प्रेमाधिक्य दिखता है। जैसे –चित्रकेतु (श्रीवृत्र) भरत (मृगदेह) इन्द्रद्युम्न (गजेन्द्र) आदि।–(देखो सारार्थ दर्शिनी (विश्वनाथ चक्र.) 10.2.33)

विरह सूर्यवत् है एवं मिलन चंद्रवत् है।

विरह सूर्य के समान माधुर्य- ऐश्वर्य सभी गुणों का प्रकाशक है। ध्यातव्य है कि यदि संयोग में भी ऐश्वर्य प्रद्योतित होने लगे तो प्रेम की अपूर्णता मानी जावेगी।

– (देखो सारार्थ दर्शिनी-10.29.32)

भक्ति के सोपान

यह चौदह हैं–

१.साधुसंग २.साधुसेवा ३.श्रद्धा ४.साधुसंग ५.भजन रुचि ६.भजन क्रिया ७.अनर्थ निवृत्ति ये अनैष्ठिक भजन के सोपान हैं - आगे नैष्ठिक भजन के सात सोपान ये हैं–८. निष्ठा ९.रुचि १०.आसक्ति ११.भाव १२.प्रेम १३.साक्षात्कार १४.माधुर्यास्वाद।

आदौ श्रद्धा ततः साधु संगः ततोऽथ भजनक्रिया
ततो ऽनर्थ निवृत्तिश्च ततो निष्ठा ततो रुचिः
अथासक्तिः ततो भावः ततः प्रेमाम्युदञ्चति
साधकानां अयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः ॥

–(भ.र.सि.पूर्व/भावभक्ति 3/15-10)

भाव भक्ति के अनुभाव

क्षान्तिः अव्यर्थ कालत्वं विरक्तिः मानशून्यता

आशाबंध समुत्कंठा नामगाने सदारुचिः

आसक्तिः तद्गुणाख्याने प्रीतिः तद्वसतिस्थले

इत्याययोऽनुभावाः स्युः जातभावांकुरे जने॥

–(भ.र.सि. पूर्व /भाव 3/ 25 -26)

भक्ति के चार भेद

१.शुद्धा २.गौणी ३. मिश्रा ४. कला

१.शुद्धा –अन्याभिलाषाशून्य होकर श्रीकृष्ण सुखार्थ चेष्टा एवं भाव। (जैसे –छाछ त्याग कर नवनीत ही ग्रहण करना।

२.गौणी–भक्ति जैसे समर्थ साधन से भोगया मोक्ष चाहना। तव भक्ति स्वयं गौण बनकर भोग मोक्ष देगी फिर अन्तर्धान हो जायगी। (जैसे छाछ मात्र चाहना एवं नवनीत त्याग कर देना)

३.मिश्रा–भक्ति में उपयोगी समझकर स्वर्ग (चित्रकेतु), अपवर्ग (प्रह्लाद), धाम (ध्रुव, गजेन्द्र) को चाहना।

(जैसे छाछ एवं नवनीत दोनों सेवार्थ चाहना)। –(देखो भाग. 11.20.33)

४.कला–ज्ञान या कर्म की पूर्णता सिद्धि के लिए साधनांग रूप में भक्ति

तप-तीर्थ-जपो-होम पवित्राणि इतराणि च

नालं कुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञान कलया कृता॥

–(11.19.4)

अलं = भूषण / पर्य्याप्ति/ शक्तिवारण

तज्जपः तदर्थभावनम् ॥

–(पातंजल योगसूत्र-समाधि। 28)

भेद-१-मौन, २-उपांशु. ३-संकीर्तन

भक्ति सम्पर्क से प्राकृत वस्तुओं की चिन्मयता

मर्त्यो यदा त्यक्त समस्त कर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे
तदाऽमृतत्वाय प्रपद्य मानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै ॥

–(श्रीकृष्णः उद्धवं- 11.29.34)

(मनुष्य जब सभी कर्मों का त्याग कर मेरी शरणागति ग्रहण करता है, तब मैं उसे चिन्मय बनाना चाहता हूं। तब वह अमृत स्वरूप को क्रमशः लगभग प्राप्त कर मेरे द्वारा अपने जैसा बना लिया जाता है।)

यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत् पुण्यगाथा श्रवणाभिधानैः
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुः यथैवांजन संप्रयुक्तम् ॥

–(श्री कृष्णा उद्धवं- 11.14.26)

एक भक्त जैसे-जैसे मेरी पुण्यगाथा का श्रवण-कीर्तन करता है, वैसे-वैसे उसका मन शुद्ध हो जाता है एवं वह सूक्ष्म वस्तु का उसी प्रकार दर्शन करने लगता है, जैसे अंजन लगाने से आंखे सूक्ष्म वस्तु को देख लेती हैं।

रागानुगा भक्ति साधन के अंग(भजनांग)

१)स्वाभीष्ट भावमय- (प्रेम एंव उसके विलासरूपस्नेहादि के (साध्य -साधन) रूप मुख्य औषधि जैसे- दास्य, सख्य, वात्सल्य मधुर भाव

२)स्वाभीष्ट भाव सम्बन्धी- (प्रेम के 'उपादान कारण') असमवायी कार्य जैसे -गुरुपादाश्रय, मन्त्रजप, ध्यान श्रवण, कीर्तनादि नवधा भक्ति एकादशी व्रत, कार्तिक नियम, भागवत, नाम, धाम, पाद सेवन आदि

३)स्वाभीष्ट अनुकूल (प्रेम के (निमित्त कारण) चिह्न रूप... जैसे -निर्माल्य तुलसी माला, गन्ध, चन्दन, वस्त्र, तिलक, नाम, मुद्रा, चरणचिह्न आदि धारण

४)स्वाभीष्ट भाव अविरुद्ध- (उपकारक निमित्त कारण) (पथ्य) जैसे- समस्त प्रकार की वैष्णव सेवा, वेद वर्णाश्रम धर्म का आदर (फिर भी-अहंग्रहो, न्यास, मुद्रा, द्वारकाध्याम, महिषी पूजन को नहीं करना चाहिए)

५))स्वाभीष्ट भाव विरुद्ध का त्याग -(साध्य प्राप्ति में बाधक) (कुपथा) जैसे- पापाचरण, अमृत, अशौच, रजः, हिंसा, वैर का त्याग

–(देखो रागवर्त्य चन्द्रिका -विश्वनाथ चक्रवर्ती)

नित्य विहार (मिलौनी रहित मिलन)

न हानिं न ग्लानिं न निजगृहकृत्य व्यसनितां
न घोरं नोद्घूर्णा न किल कदनं वेत्ति किमपि
वरांगीभिः सांगीकृत - सुहत्- अनंगाभिः अभितः
हरिः वृन्दारण्ये परमनिशम् उच्चैः विहरति ॥

यज्ञ- पत्नियों से अकस्मात् मिलने पर श्रीकृष्ण की किसी दुती (पुलिंदी) ने कहा -श्री कृष्ण को कभी नित्य विहार में कोई हानि (वियोग) किसी प्रकार की ग्लानि (श्रमजन्य) गृह काज की व्यस्तता (निमित्त) कोई भय (प्रतिपक्ष) कोई चिंता (वार्यामाणता) कोई दुःख (प्रवास) एवं मान-अपमान नहीं है वे सखियों से परिवेष्टित प्रिया के साथ दिन रात विहार करते हैं।

(श्रम (अभिसार), तम (विरह), गम (प्रवास), भ्रम (प्रतिपक्ष), मान (स्थूल), प्रसंग (नैमित्तक असुरवधादि लीला), ये सभी मिलौनी नहीं है।)

तस्यैव मे सौहृद सख्य मैत्री दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात्

महानुभावेन गुणा लयेन विसज्जतः तत् पुरुषः प्रसंगः॥

– श्रीदामा, श्री कृष्ण (10.81.36)

सौहृद (सहेली) –भक्त कर्तृक। कृष्ण के प्रति प्रेम

परस्पर हित कारिता इसमें देह सम्बन्ध प्रधान होता है।

सख्य (सखी) –कृष्ण/राधा कर्तृक कृष्ण के प्रति हित व्यवहार। इसमें विश्वास की प्रधानता परस्पर हितकारी व्यवहार इसमें प्रणयभाव प्रधान है।

मैत्री (सहचरी) –उभयंकर्तृक/कृष्ण के प्रति उपकार का भाव। असंकोच पूर्वक सहविहार। इसमें स्नेह भाव प्रधान होता है।

दास्य (मंजरी भाव) –इष्ट के प्रति व्यवहार/दैन्य प्रधान भाव होता है

भावोल्लास

जैसे

पादाब्जयोः तवविना वर दास्य मेव नान्यत् कदापि समये किल देवियाचे

सख्यायते मम नमोस्तु नमोस्तु नित्यं, दास्याय ते मम रसोस्तु रसोस्तु सत्यम्॥

–(रघुनाथ दास गोस्वामी–विलाप कुसुमांजलि)

सखी भेद

५ प्रकार की सखी होती है –

A- कृष्ण स्नेहाधिका–एक मात्र भेद

B- समस्नेहा–१-प्रिय नर्म सखी २-प्रिय सखी

C-राधास्नेहाधिका–१- प्राणसखी २-नित्यसखी

(1)श्रीकृष्णस्नेहाधिका

ये श्रीहरि में अधिक स्नेह रखने वाली सखी है। जैसे -कुसुमिका विन्ध्या। रागनुगा

मार्ग में इनका अनुगमन कोई नहीं करता इसके निम्न कारण हैं–

i) श्री कृष्ण की दृष्टि में नित्य सखियां अधिक श्रेष्ठ हैं क्योंकि वे युगल से प्रीति करती हैं, केवल कृष्ण से नहीं।

ii) कभी कृष्ण स्नेह की अधिकता में वे श्रीमती राधा का भी अपमान कर देती हैं जो अनर्थ ही है।

iii) श्री कृष्ण गौरव का ही विचार 'वैधी भक्ति' है। जबकि 'राग' में 'प्रेम के विचार' भी की प्रमुखता होती है। यह प्रेम विचार इन सखियों में कम है।

iv) अनुग्य गोपी बिना किसी को रागानुगा की प्राप्ति नहीं हो सकती। यहां नायिका का अनुगत्य नहीं है।

(2) नित्य सखी

इनमें कृष्ण विषयक स्नेह से राधा विषयक स्नेह स्पष्टत: अधिक होता है। परंतु प्रीति एवं आदर दोनों (युगल) में है। मंजरी भाव में ये ही साधकों की प्रमुख अनुकार्या हैं। जैसे -मालती माधवी एवं साधन सिद्धा मंजरियां।

(3) प्राण सखी

नित्य सखियों की तुलना में प्राण सखियों में श्री राधा के प्रति स्नेह और भी अधिक होता है। जैसे रूप मंजरी, रति मंजरी, विलास मंजरी।

(4) प्रिय सखी

इनमें सखी एवं सखी गाणों की अपेक्षा युगल में समस्नेह अधिक है। जैसे- वृंदा, नान्दीमुखी, कौन्दी।

(5) प्रिय नर्म सखी

इनमें नित्य सखी, प्राण सखी एवं प्रिय सखी तीनों की तुलना में युगल में समस्नेह और भी अधिक है। जैसे- ललिता, विशाखा, चित्रा, चंपकलता, इंदुलेखा, सुदेवी, तुंगविद्या, रंग देवी।

रसोपासना

रसोपासना

यदृच्छा (कृपा)

साधन भक्ति -१-वैधी २- रागानुगा

लोभोत्पत्ति

रागानुगा के आधार श्लोक पंचक

रिरिंसा भाव

पार्षद देह

रसोपासना - (भावोल्लास)

संचारी स्यात् समानो वा कृष्ण रत्या सुहृद् रतिः।

अधिका पुष्यमाना चेत् भावोल्लास इतीर्यते॥

–भ.र.सि. दक्षिण /5.128

(सखी की श्रीमती राधा के प्रति प्रीति यदि श्रीकृष्ण की तुलना में में अधिक रूप में पुष्ट हो तो वह 'स्थायीभाव' कोटि का भावोल्लास कहलायेगा। परन्तु श्री राधा की सखी के प्रति प्रीति श्रीकृष्ण की तुलना में या तो समान हो या श्रीकृष्ण की तुलना में न्यून कोटि की हो उसे 'संचारी' कोटि का भावोल्लास कहते हैं।)

सामान्यत: (सभी भक्त कृष्ण/भक्त कृपा जन्य ही हैं तथापि रागानुगा (पुष्टि भक्ति) तो कृष्ण कृपा द्वारा ही प्राप्त होती है)

यदृच्छा - (कृपा/संयोग/ संत-भगवत् इच्छा)

केनापि परमस्वतंत्र-भक्त संग तत् कृपाजात मंगलोदयेन॥

–(श्रीजीवगोस्वामी -भक्ति संदर्भ प्रकरण 171)

साधन भक्ति- इन्द्रियों द्वारा सम्पादित एवं भाव भक्ति की हेतु श्री कृष्णानुशीलन साधन भक्ति है। यह दो प्रकार की है-

1-वैधी भक्ति एवं 2-रागानुगा भक्ति।

"वैधी भक्तिः भवेत् शास्त्रं भक्तौ चेत् स्यात् प्रवर्तकम्।
रागानुगास्यात् चेत् भक्तौ लोभ एवं प्रवर्तकः॥"

–(भ.र.सि.साधन १/२)

यदि शास्त्र भक्ति में प्रवर्तक हो, फिर महत्त्वज्ञान हो, एवं फिर स्वरुपाशक्ति हो 'वैधी भक्ति' कहलाती है। एवं लोभ के कारण भक्ति की जाती हो। पहले स्वरूप से आसक्ति हो फिर महत्त्वज्ञान एवं शास्त्र से उसे प्रमाणित किया जाय वह रागानुगा है। यही 'पुष्टिमार्ग' है।

लोभोत्पत्ति का लक्षण है-

तत् तत् भावादि माधुर्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते
नात्र शास्त्रं न युक्तिं च तल्लोभोत्पत्ति लक्षणं॥

–(भ.र.सि. 1.2. 292)

जहां नित्य व्रजवासी परिकर के भाव एवं माधुर्य्यास्वाद का श्रवण दर्शन कर सारी ऐश्वर्यादि अपेक्षाओं को छोड़ स्वरूप के साथ 'लौकिक- सद्बन्धुभाव' स्थापित किया जाए। शास्त्र एवं युक्ति की अपेक्षा भी नहीं की जाए, उसे 'लोभ' समझना चाहिए।

रागानुगा साधन के ५ आधार श्लोक हैं-

बिराजन्तीं अभिव्यक्तं व्रजवासि जनादिषु
रागात्मिकानुसृता इयं रागानुगोच्यते॥

–(भ.र.सि. 1.2.270)

रागात्मिका भक्ति ब्रजवासी जनों में (कामात्मिका एवं सम्बन्धात्मिका रुप में) मूलतः विराजमान रहती है। उसका अनुसरण करने पर रागानुगा (पुष्टि भक्ति) की प्राप्ति होती है।

रागा नुगा साधन के स्तम्भ

स्तम्भ -(१) लोभ (२) कृपा (यदृच्छा)(३) नित्यपरिकर का आनुगत्य (४) निज एकादश भावों मे स्थिति -ये हैं-

(i) नाम (ii) रुप (iii) वय (iv) वेश (v) सम्बन्ध (vi) यूथ एव च (vii) आज्ञा (viii) सेवा(ix)पराकाष्ठा (x) पाल्यदासी (xi)निवासक:

-(गुटिका)

आचर पद्धति

सेवा साधक रूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि
तद्भाव लिप्सुना कार्या ब्रजलोकानुसारतः ॥

–(भ.र.सि. 1.2.295)

मानसिक या प्रत्यक्ष उपचारों से श्री कृष्ण सेवा करनी चाहिए। साधक (यथावस्थित) रूप में जब कोई साधक विराजमान है, तब उसके अनुकार्य श्री रूप गोस्वामी आदि आचार्य होंगे (ब्रजलोका:)। सिद्ध रूप में भाव स्थिति होने पर ब्रजलोक का अर्थ श्री रूप मंजरी आदि होंगे।

मुख्य साधनांग

कृष्णं स्मरन् जनं चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितं
तत्तत् कथा रसः चासौ कुर्यात् वासं ब्रजे सदा ॥

–(भ.र.सि.1.2. 294)

1- रागानुगा का मुख्य साधनांग है–स्मरण (तनुजा वित्तजा की अपेक्षा मानसी सेवा की प्रमुखता)। अर्थात् निज सम्बन्ध के अनुरूप प्रियतम श्रीकृष्ण का स्मरण किया जाय।

2- निजभावानुकूल प्रियतम श्रीकृष्ण परिकर का स्मरण एवं उन्हीं का आनुगत्य (अनुकार्य का आनुगत्य) ग्रहण हो।

3- निजभावानुकूल कृष्ण-कथा का आस्वाद एवं अन्य रसों को अपने अंगी रसका पोषक बना लेना।

4- ब्रज में निरन्तर निवास यथासाध्य ब्रज में साक्षात् निवास, अथवा 'मन-वृन्दावन' में 'मानसी निवास'।

मन मुखी 'उत्पात् भक्ति' से बचते हुए, श्रुति स्मृति अनुमोदित राग अनुकूल श्रवण- कीर्तनादि वैधी भक्ति के अंगों का सेवन एवं तदनुरूप सेवा।

श्रवणोत्कीर्तनादीनि वैधी भक्त्युदितानि तु
यान्यांगानि च तान्यत्र विज्ञेयानि मनीषिभिः।

–भ.र.सि. 1. 2.29

फिर भी वैधीभक्ति के कुछ अंगोंका सेवन रागानुगा भक्तों को नहीं करना चाहिए - जैसे अहंग्रहोपासना, मुद्रान्यास, द्वारकाध्यान -रुक्मिणी जी आदि का पूजन, आगमशास्त्र की विविध विधियां आदि।

•शास्त्रविहित अंगों में भी कुछ अंग सिद्धदशा (अन्तर्दशा + पार्षदस्वरूप दशा) में नहीं किए जाएगे। जैसे-श्रीराधा, चन्द्रावली आदि श्री गोलोक। गोकुल में कुछ आचरण नहीं करती है। परन्तु साधक देहमें साधकजन करते हैं उन्हें कभी नहीं छोड़ते। जैसे– गुरुपादाश्रय, एकादशी व्रत, शालग्राम-तुलसीसेवा, कुछ वैदिक मंत्रों का भी नित्य सेवा क्रम में प्रयोगादि।

लुब्धैः वात्सल्य सख्यादौ भक्तिः कार्याऽत्र साधकैः
ब्रजेन्द्र सुवलादीनां भावचेष्टित मुद्रया॥

–(भ.र.सि. 112/306)

दास सखा पिता प्रिया के भाव दो प्रकार से धारण किए जा सकते हैं-

(i)-नित्य परिकर से अभेदभावना धारण करना। यह भाव साधकों की दृष्टि से अत्यन्त अनुचित होगा; क्योंकि अहंग्रहोपासना (मैं ही कृष्ण हूं) भक्ति में अनुचित एवं अपराध रूप मानी गयी है।–(देखो दुर्गम् संगमिनी-जीव- गो.)

(ii)स्वतंत्र रूप में दास पिता सखा प्रिया अभिमान। यह किया जा सकता है फिर भी नित्य परिकर का आनुगत्य रहेगा। सिद्ध देह में तो पितावत् अभिमान रखा जा सकता है। परन्तु साधक देह में नन्द सुवलादि की चेष्टा भाव एवं मुद्रा का बाह्य दशा में प्रत्यक्ष अनुसरण नहीं किया जा सकता।

क्योंकि हम साधक यथावस्थित देह में गुरु को दण्डवत् प्रणाम, एकादशी व्रत, तुलसी पूजा का त्याग नहीं करेंगे। यदि ऐसा किया, तो गुरु अपराध के पात्र बन एवं नरकगामी हो जावेगे। हां मानसी में एवं सिद्ध अवस्था में वैसा ही संरक्षक या मित्रभाव, असंकोच आचरण एवं वेश श्रृंगार आदि ग्रहण किया जायगा। साधक अवस्था में उसकी केवल 'धारणा' की जायेगी।

रिरिंसा भाव

रिरिंसा सुष्ठु कुर्वन् यो विधिमार्गेण सेवते
केवलेनैव स तदा महिषीत्वम् इयात् पुरे॥

–(भ.र.सि. पूर्व 2/303)

यदि श्री कृष्ण के साथ रमण करने की अभिलाषा करते हुए सम्पूर्ण (कैवलेनैव) विधि मार्ग का सेवन किया जाएगा तो द्वारका या गोलोक के बहिः मंडल में महषी गणत्व की प्राप्ति होगी।

A-1-श्री राधा कृष्ण उपास्य। 2-स्वकीया परकिया मिलित उपासना।

3-संपूर्ण अंगों सहित विधि मार्ग साधन का पालन करने पर गोलोक (पुर) में सखी/ मंजरी/ नायिका भाव से सेवा प्राप्ति होगी।

तत्र विधि मार्गेण राधा कृष्णयोः भजने महाबैकुण्ठस्थ गोलोके

खलु अविविक्त स्वकीया - परकीया भावभयं ऐश्वर्य ज्ञानं प्राप्नोति॥ –(रागवर्त्य चन्द्रिका, प्रकट. 6)

B-1-श्रीराधाकृष्ण उपास्य। 2-केवल स्वकीया भाव मयी उपासना। 3-विधिमार्ग के सभी अंगों का सेवा में प्रयोग हो तो फल। श्रीराधा की ही वैभव रूपा सत्यभामा / रुक्मिणी के परिकर में स्थिति की प्राप्ति होगी। क्योंकि गति (परकीया भाव) की पूर्णता स्थिति 'स्वकीया' में है।

"विधिमार्गेण भजने द्वारकायां श्रीराधा-सत्यभामा परिकरत्वेन स्वकीया भावं ऐश्वर्य ज्ञान मिश्र माधुर्य ज्ञानं प्राप्नोति"

–(रागवर्त्य चन्द्रिका प्रक. 6)

1-श्री राधा कृष्ण उपासना। 2-परकीया भाव में सर्वोच्च बुद्धि। 3- रागात्मिका परिकर द्वारा अपनायी गयी राग पूर्ण सेवा पद्धति हो, तो ब्रजभूमि में ही राधा परिकर रुप में शुद्ध माधुर्यज्ञानमय मंजरी /सखी / नायिका भाव की सेवा की प्राप्ति होगी।

"रागमार्गेण भजेन ब्रजभूमौ, राधिका परिकत्वेन, परकीया भावं शुद्ध माधुर्यज्ञानं प्राप्नोति॥"

–(रागवर्त्म चंद्रिका - विश्वनाथ चक्र० प्रकरण 6.)

पार्षद देह–सिद्धियां तीन हैं–

उत्क्रान्ति सिद्धि – पांचभौतिक देह का गिरना एवं अन्य जन्म की पुनः प्राप्ति न होना।

भावसिद्धि – श्रीमद् गुरुदेव द्वारा प्रमाणित एवं श्रीकृष्ण द्वारा प्रदत्त एकादश भावों से युक्त अन्त:चिन्तित देह का प्रत्यक्ष - पार्षद स्वरूप धारण करना। एकादश भाव है-

नाम-रूप-वय:- वेश-सम्बन्ध - यूथ एव च
आज्ञा- सेवा -पराकाष्ठा पाल्यदासी -निवासक:

-गुटिका

स्वरूप सिद्धि – 'सम्बन्ध' भाव प्राप्त करने के लिए लीला परिकर के मध्य गोपी-गर्भ से जन्म। परन्तु यह पुनः गर्भवास संसरण नहीं है क्योंकि, परिकर 'सिद्ध-परिकर' है। केवल लीला सम्बन्ध की सिद्धि के लिए जन्म का आभास मात्र है।

-(देखो वैष्णव तोषिणी-10.29.9-जीव गो.)

रस-शास्त्र

मूल प्रवृत्तियां एवं रस

भक्तिरस की अप्राकृतता

रस का स्वरूप

स्थायी भाव

10 स्मर दशाएँ

अनुभाव

मधुर रति की स्वतः सिद्धता

कुछ विशेष अनुभाव - विब्बोक, कुट्टमित, मोट्टायित, अवहित्था

33 संचारी

साधारणी / समंजसा / समर्था रति

प्रेम स्नेहादि

महाभाव

शान्त

दास्य

सख्य

वात्सल्य

मधुर

रास

पूर्वराग / मान/प्रवास / प्रेमवैचित्य

रत्याभास

मूल प्रवृत्तियां एवं रस

विलियम मैकड्यूनल के अनुसार–मानव की मूल मनोवृत्तियां निम्न है–

गौणरस

(1) मनोविनोद–हास्य(हास)

(२) शरणागति–करुण(करुणा)

(3) युयुत्सा–रौद्र(क्रोध)

(५) योजनान्वेषण–वीर(उत्साह)

(5) पलायन–भयानक(भय)

(6) जिज्ञासा –अद्भुत(विस्मय)

(7) निवृत्ति–जुगुप्सा(घृणा)

मुख्य रस

(8) संग्रह–शांत(निर्वेद)

(9)दीनता–दास्य(आत्महीनता)

(10) सामूहिकता –सख्य

(11) पुत्रकामना–वात्सल्य

(12) काम–श्रृंगार

अतिरिक्त मनोवृत्ति

(13) अभिमान –(आत्म गौरव)

(14) रचना–(कृति)

किन्ही भाग्यशालियों जिनके हृदय में प्राचीन अथवा आधुनिक भक्ति वासना विद्यमान है ऐसे के हृदय में कृष्ण गुरु कृपा द्वारा श्री कृष्णरति उत्पन्न होती है; सभी में नहीं।

प्राक्तन्याधुनिकी चास्ति यस्य सद्भक्ति वासना
एष भक्ति रसास्वादः तस्यैव हृदि जायते

–भ.र.सि.

नित्याव्यक्तोऽपि भगवान् ईक्षते निज शक्तितः
ताम् मृते परमानंदं कः पश्येत् अच्युतं प्रभुम् ॥

–(लघु भागवतामृत / देखो-10-14.55)

भगवान् नित्य एवं अव्यक्त रूप हैं। वे निज शक्ति के द्वारा ही अन्यों को दिखायी दे सकते हैं। उनकी कृपा शक्ति के बिना परमानंद प्रभु को कौन भला देख सकता है।

रसनिष्पतिः

विभावैः अनुभावैः च सात्त्विकैः व्यभिचारिभिः
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानां आनीता श्रवणादिभिः
एषा कृष्ण रतिः स्थायी भावो भक्तिरसो भवेत् ॥

–(भ.र.सि. दक्षिण / 115)

जब श्री कृष्णरति स्थायीभाव विभाव अनुभाव, सात्त्विकभाव एवं व्यभिचारी भावों से मिलकर श्रव्यकाव्य या दृश्यकाव्य या श्रवणादि भक्ति अंगों के सेवन से अभिव्यक्त होकर आस्वादनीय बनता है तब उसे रस कहते हैं।

रस

"रसो वै सः। रस ह्येवायं लब्धानन्दी भवति"

–(तैत्त० उ० ब्रह्मानंद। 7 अनुवाक।)

भरतमुनि –रस्यते इतिरसः (अर्थात् स्थायी भाव की सुपुष्ट चमत्कार -आधायी **आस्वादनीय स्थिति रस है।**)

"सरसते इति रसः" –(जो लौकिक कारण कार्य सहकारी को विभाव अनुभाव

संचारी भाव रूपता प्रदान कर दे भग्नावरण (स्व पर तटस्थ भाव निवृत्त) करा दे उसे रस कहते हैं।

आनंदवर्धन के अनुसार – "स्थायी भाव विशिष्ट: भग्नावरणा चिदेव रस." "ध्वन्यालोक-लोचन" आनंद वर्धन

पण्डितराज जगनाथ के अनुसार –भग्नावरणा चिद् विशिष्ट: स्थायी एवं रसः–(रसगंगाधर - पण्डितराज जगनाथ)

रसनिष्पत्तिः

संस्कार युगलोज्ज्वला रतिः भक्तानां हृदि राजन्ती, कृष्णादि
विभावाद्यैः प्रौढानंद चमत्कार काष्ठाम् आपद्यते।

–भ.र.सि.(2/1/9-10)

स्थायीभाव

अविरुद्धान् विरुद्धाञ्च भावान् यो वशतां नयेत्
सुराजेव विराजेत स स्थायी भाव उच्यते॥

–भ.र. सि. दक्षिण 5.1

यथा स्वैः एव सलिलैः परिपूर्य बलाहकाम्
रत्नालयो भवति एभिः पुष्ट : तै एव वारिधिः।

–(भी.र.सि.दक्षि 5)

दस स्मर दशाएं-

१.चक्षूरागः प्रथमं २. चिन्ताऽसंगः ततोऽथ ३. संकल्पः ४.निद्राच्छेदः ५.तनुता ६.विषयनिवृत्तिः७.प्रपानाशः८.उन्मादोऽथः९. मूर्च्छा १०.मृतिः इत्येताः स्मरदशाः दशैवस्युः॥

–(सारार्थ दर्शिनी- 10.42.14)

अनुभावाः

A उद्भास्वरा (1)यथा–

नीवी-उत्तरीय धम्मिल्ल स्रंसनं, गात्रमोटनं

जृम्भा-घ्राणस्य फुल्लत्वं निश्वासाद्याः च ते यताः ॥(1)

(B) सात्त्विका (8) यथा–

स्तंभ स्वेद रोमांचा: अश्रु कम्प विवर्णताः

स्वरभंगश्च प्रलय: सात्विक: अष्टधा: स्मृता: ॥(8)

भेद-१-धूमायित २-ज्वलित ३-दीप्त ४-सुदिप्त

(C) अलंकाराः (22) यथा –12 स्वभावज + 7 अयत्नज + 3 अंगज

12. स्वभावज यथा–1- लील 2- विलास 3- विच्छिन्ति 4-किलकिंचित् 5- विभ्रम 6- वित्वोक: 7-ललितं 8- मौग्ध्यं 9-विकृतिं 10-कुट्टमितं तथा 11-मोट्टायितं च 12- चकितं द्वादशः स्युः स्वभावजाः ॥ (12)

अयत्नज यथा–१. शोभा २. माधुर्य ३. पागल्भ्यं ४. औदार्यं ५.धैर्यमेवं च ६.कात्तिः ७.दिप्तिः(7)

3 अंगज यथा–1.हाव 2.भाव 3. हेला

परिकर में कृष्ण रति स्वाभाविक (स्वतः सिद्ध) है

लीलायें उसके उत्तरोत्तर श्रेष्ठ स्रोत (कारण) है–

1- अभियोगात् (दूती)
2- विषयत: (शब्द स्पर्श रूप रस गंध)
3- सम्वन्धात् (पारिवारिक सम्बन्ध
4- अभिमानतः
5- सा तदीय विशेषेभ्यः (मयूर मुकुट माला श्रृंगारादि)
6- उपमातः (घनश्याम आदि)
7- स्वभावतः (मुख्य कारण)

कुछ महत्वपूर्ण अनुभाव –

किलकिंचित्–

गर्वाभिलाष - रुदित-स्मित - असूया - भय क्रुधाम्
संकरी करणं हर्षात् उच्यते किलकिंचितम्

(गर्व-अभिलाषा-रुदन-स्मित- असूया-भय -क्रोध का हर्ष के कारण मिलजुलकर प्रकट होना 'किलकिंचित्' है।)

विब्वोक– "इष्टेऽपि भान गर्वाभ्यां विब्वोकः स्यात् आनदरः"

(प्रिय द्वारा अपने प्रति अभीप्सित होने पर भी मान एवं गर्व के कारण उसके व्यापार एवं स्वयं उसका अनादर करना विब्वोक है) मोहाइत-कान्त की चर्चा चलने पर उसे और और श्रवण करने की अभिलाषा।

कुट्ट मित–मिलन काल में मिथ्या क्रोध (नेति नेति वचन)।

अवहित्था –निज भाव का गोपन।

संचारी (कुल 33) भाव है

मिलन में (17) _ त्रास, श्रम, मद, गर्व, उन्माद, आलस्य, चपलता शंका, आवेग, ब्रीडा, सुप्ति, मति (शास्त्रविचार), हर्ष, औत्सुक्य, अवहित्था, असूया निद्रा आदि

मान में (6) - वितर्क, शंका, अमर्ष, उग्रता, असूया अवहित्था

विरहये(16) निर्वेद, विषाद, ग्लानि, दैन्य, वितर्क शंका, अपस्मार, मोह, जाड्य, व्याधि, मृति, अमर्ष, धृति, हर्ष, औत्सुक्य बोध आदि

व्यभिचारी भाव लक्षण

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति स्थायिनि अमृत वारिधौ
उर्मिवत् बर्द्धयन्त्येनं यान्ति तद्रूपतां च ते॥

–(भ.र.स. 4/3)

(स्थायी भाव एक अमृत समुद्र है उसमें लहरों की तरह व्यभिचारी भाव उछलते हैं एवं डूब जाते हैं। वे स्थायीभाव के ही बढ़ाते हैं एवं स्थायीभावरूपता को ही प्राप्त हो जाते हैं।)

मधुर (उज्जवल) रति के भेद

साधारणी रति

नाति सान्द्रा हरेः प्रायः साक्षात् दर्शन सम्भवा

सम्भोगेच्छा निदानेयं रतिः साधारणी मता॥

–(उ.नी.मणि स्थायी। 45)

(जो स्वयं सघन न हो, श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन से उत्पन्न हो एवं जिसका मूल कारण संभोग की इच्छा हो वह 'साधारणी रति' है। इसकी उदाहरण (आश्रय) मथुरा में श्री कुब्जा है।)

समंजसा रति

पत्नी भावाभिमानात्मा गुणादि श्रवणादिजा

क्वचिद् भेदित संभोग तृणा सान्द्रा समंजसा॥

–(उ.नी.म. स्थायी–48)

(जहां पत्नी होने का अभिमान हो श्री कृष्ण के गुण आदि का श्रवण कर जो रति उत्पन्न हुई हो एवं कृष्ण सेवा से कभी संभोग तृष्ण भिन्न भी प्रकट हो उसे 'समंजसा रति' कहते हैं। यह श्री रुक्मणि आदि महिषियों में प्रकट होती है।)

समर्था रति

कं चित् विशेषमायान्त्या सम्भोगेच्छा ययाभितः

रत्या तादात्म्यम् आपन्ना सा समर्थेति भव्यते॥

–(उ.नी.म. स्थायी 52)

(जहां सम्भोग की तृष्णा कुछ वैशिष्ट को प्राप्त कर कृष्णसेवा में ही तादात्म्यापन्न हो जाए, उसे 'समर्था रति' कहते हैं। यह श्री ब्रजगोपियों में विराजने वाली रति है।)

प्रेमा:-

सर्वथा ध्वंस रहितं सत्यपि ध्वंसकारणे
यत् भाव बन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्तितः॥

–(उ.नी.म.स्थायी-63)

(जो ध्वंस के कारण उपस्थित होने पर भी ध्वंस रहित हो।)

स्नेहः-

आरुह्य परमां काष्ठां प्रेमा चित् दीप दीपनः
हृदयं द्रावयन् एषः स्नेह इत्यभिधीयते

–(वही स्थायी-79)

(चित् शक्ति से सुदिप्त प्रेम ही परम काष्ठा को प्राप्त कर जब हृदय को द्रवीभूत कर दे तो उसे स्नेह कहते हैं)

भेदः-

1-घृतस्नेह –आत्यंतिक आदरमय: (88)

2- मधुस्नेह–मदीयत्वातिशय माक्(93)

मान:-

अदाक्षिण्यं मानः (96)

(अनुकूल न रहना मान है)

(भेद) (i)उदान्त= घृतस्नेहमय अदाक्षिण्य 99

(ii)ललित= मधुस्नेह में कौटिल्य एवं नर्म युक्त अदाक्षिण्य (103)

प्रणय: -

विश्रम्भधारण करने वाला मान प्रणय है(108)

(भेद) १-सुमैत्य -उदात्तमान जन्य(121)

२-सुसख्य - ललित मानजन्य (121)

राग:- #

दुःखम् अत्यधिकं चित्ते सुखत्वेनैव व्यज्यते (126)

जहां अत्यधिक दु:ख भी सुख रूप में प्रकट हो वह राग है।

(भेद)- १-नीलीराग = तिरोधान सम्भावना रहित बाहर अतिप्रकाशरहित अवहित्थामय राग (131)

२-श्यामाराग = नीली राग की तुलना में अधिक प्रकाश शील अहैतुक राग (133)

३-कुसुम्भराग = चित्त में शीघ्र संचारित नील श्याम रागों से युक्त राग (136)

४-मंजिष्ठाराग = स्थायी एवं अन्य राग से निरपेक्ष सदा बृद्धिशील राग (139)

अनुराग:-

सदानुभूतम् अपि य: करोति नवनवं प्रियं(146)

अनुभावा: - 1- परस्पर वशीभाव, प्रेमवैचित्य, विस्फूर्ति

महाभाव भाव:-

अनुरागः स्व संवेध दशां प्राप्य प्रकाशितः

यावदाश्रय वृतिःचेत् भाव इत्यभिधीयते-154

दशा

सर्वोपरि अवस्था स्पष्ट रूप से प्रकट हो, (प्राप्य प्रकाशित:)

अनुराग की सर्वोपरितनी अवस्था महाभाव ही है।

स्वसंवेद्य

1.यद्यपि रति आदि सभी भक्तिदशाएँ भी स्वसंवेद्य है, तथापि महाभाव तो मुख्यतः 'स्वत: प्रकाश' ही है।

2.महाभाव तीन सुखों को प्राप्त कराता है –कर्ता करण कर्म रूप।

(१) यथा "मेरा अनुराग स्वयं सुख अनुभव रूप है" (अनुरागोत्कर्ष एव महाभाव:, सुख रूप:) अर्थात् अनुराग ही निज आनंदांश से स्वयं कर्ता बनकर कृष्ण का सुख रूप में प्रकाशन करता है, यहां भाव रूप अनुराग 'कर्ता' है।

(२)"अनुराग उत्कर्ष से कृष्ण का अनुभव हो रहा है"– यह द्वितीय सुख है। यहां श्री कृष्णा 'कर्म' बन जाते हैं।

(३)"श्री कृष्ण का अनुभव होने पर गोपी अपने अनुराग के उत्कर्ष का अनुभव करती है।" यह तृतीय सुख है। यहां कर्म रूप में अनुराग का अनुभव है। इस प्रकार अनुराग ही कर्ता करण एवं कर्म बन गया। महाभाव गोपी को तीनों प्रकार के सुखों का अनुभव कराता है।

3–यथावसर अधिकांश सात्त्विक भाव इयत्ता पूर्वक महाभाव में प्रकाशित होते हैं।

यावदाश्रय वृत्ति-

i)श्रीराधा सभी प्रेम स्नेह आदि दशाओं की मूल आश्रय हैं। अतः श्रीराधा की स्वयंप्रकाश प्रेमोत्कर्ष दशा सभी अनुगत (यावत् आश्रय) प्रीतिमान साधक-सिद्धजनों को अपने अनुरागोत्कर्ष के प्रभाव से वृत्ति चेष्टा युक्त बना देती है। वे सभी प्रेमानन्द मय हो जाते हैं। ऐसा तारतम्य से होता है। क्योंकि महाभाव 'आसन्नजनता हृद् विलोऽनं एवं ब्रह्माण्ड-क्षोभकारित्वं' गुण वाला होता है। यद्यपि सभी लोगों में महाभाव की सत्ता (वृत्ति) तो नहीं आती, परंतु अपनी अपनी योग्यतानुसार प्रीति की चेष्टा होने लगती है। (वृत्ति का अर्थ चेष्टा है सत्ता नहीं)। (विश्वनाथ)

ii) 'यावत्' इस अव्यय शब्द का अर्थ इयत्ता होता है। अर्थात् राग की जितनी इयत्ता हो सकती है, उसकी पूर्णस्थिति महाभाव में प्रकट होती है। 'राग' का अर्थ है दुःख में परमसुख एवं लौकिक सुख में परमदुःख मानना (गोपीभाव)। कुलबधुओं को कुलमर्यादा त्याग दुःख दी इयत्ता है। जो केवल गोपियों में ही दिखती है।

iii) अथवा भाव प्रेम स्नेह मान प्रणय राग अनुराग के जितने भी अनुभवादि हो सकते हैं उनकी इयत्ता इसी महाभाव में श्रीराधा में प्राप्त होती है।

पूर्वराग प्रसंग में भी श्रीराधा में राग की पराकाष्ठा के लक्षण दिखते हैं। (यावती रागस्य इयत्ता सम्भवति तावतीं इयत्तां अत्रापि वर्तनं (वृत्तिः) यस्य महाभावः।

iv) राग में ऐसी मर्यादा का त्याग स्वकीया महिषिगणों में सम्भव नहीं है। अतः महाभाव केवल ब्रजगोपियों में ही प्राप्त ही सकता है।

v) रति से महाभाव तक सभी प्रेमदशाओं के तीन स्वरूप हैं-कर्ता, कर्म एवं करण।

1–ह्लादिनी के अंश होने से रति आदि स्वयं कर्ता बनती है। अनुरागोत्कर्ष (कर्ता) कृष्ण का अनुभव स्वरूप ही है। यह प्रथम सुख है।

2– संविद अंश से अनुरागोत्कर्ष श्री कृष्ण का अनुभव कराने वाला मुख्य साधन है (करण)। (मैं अनुरागोत्कर्ष से कृष्ण का अनुभव करती हूं)। यह द्वितीय सुख है। यहाँ अनुराग साधकतम (करण) है।

3- स्वसंवेद्य रूप में अनुरागोत्कर्ष स्वयं अपना ही अनुभव संवित् अंश से करता है। यहां अनुरागोत्कर्ष स्वयं 'कर्म' बन जाता है (मेरा कृष्ण के प्रति प्रेम, एवं कृष्ण का मेरे प्रति प्रेम, मेरे प्रेमोत्कर्ष का अनुभव कर रहा है)– यह तृतीय सुख है। इसप्रकार प्रेमोत्कर्ष ही कृष्णानुभव का कर्ता एवं करण एवं कृष्ण के प्रेम का कर्म बन जाता है॥ यही स्वसंवेद्य दशा है। स्वसंवेद्य का अन्वयार्थ होता है जो अन्य की अपेक्षा न रखे वह 'स्वसंवद्य' है।

भेद

महाभाव में दो भेद हैं- रूढ एवं अधिरुढ

रुढ - "उद्दीप्ता सात्विका यत्र स रूढ इति भव्यते" यह प्रतिपक्ष (चंद्रावलि) तटस्थपक्ष (भद्रा) एवं सुहत् पक्ष (श्यामला) आदि में प्राप्त होता है।

अनुभाव

निमेषासहता, आसन्न जनता हृद् विलोडनम्
कल्पक्षणत्वं, खिन्नत्वं तत् सौख्येऽपि आर्तिशंकया
मोहादि अभावेऽपि आत्मादि सर्वविस्मरणं सदा
क्षणस्य कल्पता इत्यद्या यत्र योग वियोगयो: ॥

अधिरूढ़

रूढ़ के अनुभावों से कुछ विशेषता प्राप्त अनुभाव वाला महाभाव अधिरूढ़ कहलाता है। यह श्री राधा यूथ (स्वपक्ष) एवं श्रीकृष्ण में प्राप्त होता है। इसे अनुभाव विशिष्टता पूर्वक रूढ़वत् ही है।

अधिरूढ़ के दो उपभेद हैं– १.मोदन एवं २.मादन

मोदन - श्री राधा कृष्ण में उद्दीप्त सात्त्विकों की सुंदरता प्राप्त हो उसे मोदन कहते हैं। यह संयोग दशा है। इससे श्री कृष्ण एवं अन्य कांताओं में क्षोभ तथा भय उत्पन्न हो जाता है।

मादन – यह भाव श्री राधिका में ही प्राप्त है– इसका लक्षण है –

सर्वभावोद्गमोल्लासो मादनोऽयं परात्पर:
राजते ह्लादिनी सार: राधायां एव य: सदा ॥

–(उ.नी.म.स्थायी 299)

मादन के अनुभाव

1. ईर्ष्या के अयोग्य के प्रति भी प्रबल ईर्ष्या ।

2. स्वयं द्वारा सदा कृष्ण का भोग करने पर भी यदि अन्य में प्रेम की गंधमात्र भी देखें तो उसकी स्तुति।

जैसे –अयोग्य वनमाला के प्रति ईर्ष्या एवं पुलिंदीगणों की स्तुति।

(उ.नी.म. स्थायी. 221)

मोहन– वियोग दशा में मोदन ही मोहन होता है।

मोदनोऽयं प्रविश्लेष दशायां मोहनो भवेत् (वही स्थायी 179)

अनुभाव – अन्य कांता से आलिंगित होने पर भी कृष्ण में मूर्च्छा, असह्य दुःख स्वीकार कर कृष्ण को सुख देने की अभिलाषा, ब्रह्मांड क्षोभकारिता, पक्षी गणों को भी रुला देना, मृत्यु स्वीकार कर अपने पंचभूतों द्वारा श्री कृष्ण के संग की तृष्णा, दिव्योन्माद (उद्घूर्णा एवं चित्र जल्प) (उद्घूर्णा विवश चेष्टा), चित्र जल्प = गूढ़ रोष उत्कंठा आदि वचन)

दिव्योन्माद – यह विरह में उन्मत्त जैसी दशा है।

अधिरूढे महाभावे मोहनत्वं उपागते

अवस्थान्तरम् आप्तोऽसौ दिव्योन्मादः इतीर्यते॥

–(भ.र.सि दक्षिण 4/85)

शांत भक्ति-(स्वच्छा)(शांति रति)= श्री कृष्ण की ब्रह्म रूप में उपासना।

भेद

1. आत्माराम (जैसे सनकादि)

2. तापस "भक्ति द्वारा ही मुक्ति हो सकती है"– ऐसा भक्ति साधन करने वाले मुक्तिकामी 'तापस' कहलाते हैं। ये आत्माराम एवं तापस दोनों कृष्ण एवं कृष्णभक्तों की करुणा से 'कृष्ण रति' प्राप्त करते हैं।

दास्य (प्रीति)भक्ति रस = श्री कृष्ण के प्रति संभ्रम (आदर) मयी प्रीति

भेद

1.अधिकृत –(ब्रह्मा, इंद्र, शंकरादि)

2.आश्रित –(शरणागत, ज्ञानी, सेवानिष्ठ) जैसे कालिय एवं जरासंध के बंदी २०

हजार राजा, शौनक, बहुलाश्व, इक्ष्वाकु श्रुतदेव आदि सेवानिष्ठ भक्तगण।

3.पारिषद –जैसे उद्धव, दारूक, जैत्र

4.अनुग –जैसे–रक्तक पत्रक पत्री मधुकंठ मधुव्रत

रसाल: सुविलास, प्रेमकंद, मरंदक

आनंद, चंद्रहास:, पयोद:, वकुलस्तथा

रसद: शारदाद्या: च ब्रजस्था अनुगा मता : ॥(भ.र.सि. पश्चिम 2/ 41- 42)

सख्य (प्रेयस भक्ति)

भेद

१ .सुहृद् –(वात्सल्य गंधि सख्य)– जैसे सुभद्र, मंडलीभद्र, गोचर, बलभद्र आदि

२.सखा– (कनिष्ठ कल्पा)– विशाल वृषभ, ओजस्वी देवप्रस्थ, वरुथप मरंद, कुसुमापीड, मणिबंध, करंधम

३.प्रिय सखा –(तुल्या)– श्रीदाम, सुदाम दाम, वसुदाम, किंकिणी स्तोक कृष्ण, भद्रसेन

४.प्रिय नर्म सखा– (आत्यांतिक रहस्य युक्त:)–सुबल, अर्जुन, गंधर्व, वसंत, उज्ज्वल

वात्सल्य भक्तिरस -

यशोदा, नंद, रोहिणी, देवकी, कुंती, वसुदेव, सांदीपनि आदि

मधुरभक्ति प्रियता–(कांता रति)

भेद-

स्वकीया, परकीया, स्वपक्षा, प्रतिपक्षा, तटस्था, सुहृत् पक्षा आदि

स्वकीया - करग्रहविधिं प्राप्ता पत्युरादेश तत्परा: -(उ.नी .म .हरि प्रिया 314)

(अग्नि मंत्र ब्राह्मण काल की साक्षी में स्वीकार की गई प्रिया स्वकीया है) वस्त्रहरण लीला में गांधर्व रीति से स्वीकार गोपियों को स्वकीया भी मान लिया गया है।

परकीया - रागेणैवाअर्पितात्मानो लोकयुग्मानपेक्षया

धर्मेणाऽस्वीकृता यास्तु परकीया भवंति ताः॥

–(उ.नी.म.हरि प्रिया 3117)

(ऐहिक एवं परलोक की चिंता न कर प्रीति के कारण आत्मसमर्पण करने वाली नायिका जिसे धर्मविधि से स्वीकार नहीं किया गया है, परकीया है।)

रास

१ .परम रस कदम्बमयः (रास)–(बृहत्तोषिणी सनातन गो.)

(परकीया भावमय सर्वश्रेष्ठ रस का समूह पूर्ण लीला को रास कहते हैं।) 10.29.1

२ .रसानां समूह रासः (दर्शन परक एकदशीय व्याख्यान)

(रास की सभी विभावादि सामग्री रस समूह अर्थात् ब्रह्म रूप हैं)

३ .नटैः गृहीत कण्ठीनां अन्योन्यात्त करश्रियाम्

नर्तकीनां भवेत् रासः मण्डली भूप नर्तनम्॥

–(भरत मुनि)

(जिस नृत्य विधा में अनेक नट हों। वे नटी गणों के गलबाही दें। एवं नर्तकी गण एक दूसरे का हाथ पकड़ कर मण्डल बनाकर नृत्य करें, उसे रास कहते हैं।)

पूर्वराग

प्राक् असंगतयोः भाव : पूर्वरागो भवेत् द्वयोः॥

–(भक्ति र. सि.पश्चिम 312)

(मिलन के पूर्व प्रेमी प्रेमिका का भाव पूर्वराग कहलाता है। पूर्व रात के पश्चात् संक्षिप्त 'संयोग' होता है।)

मान

मिलन की अनुकूल परिस्थिति होने पर भी जो मनोदशा मिलन न होने दे वह मान है। मान के पश्चात् संकीर्ण मिलन होता है।

मान शांति के उपाय–साम (अनुनय) दान (आभूषणादि) भेद, स्वमाहात्म्यादि कीर्तन एवं सखा गणों आदि द्वारा उपदेश) नति, उपेक्षा (तृष्णा) रसांतर (आकस्मिक भय) देश, काल, मुरलीवादन आदि है।

प्रवास

प्रवासः संग विच्युतिः ॥–(भी.र.सि . पश्चिम 3131)

(मिलन से दूर हो जाना एवं दूर स्थित होना प्रवास है। प्रवास के पश्चात् संपन्न मिलन होता है।)

विरह की दस दशाएं -

चिंताऽत्र जागरोद्वेग तानवं मलिनांगता
प्रलापो व्याधिः उन्मादः मोहो मृत्युः दशा दश ॥

–(उ.नी.म .श्रृंगार 167)

समृद्धिमान संयोग

दुर्लभालोकयोः यूनोः पारतन्त्राद् वियुक्तयोः
सम्भोगातिरेको यः उच्यते स समृद्धिमान् ॥

–(उ.नी.म.संभोग 18)

(दूर प्रवास के कारण परतंत्र होकर बिछुड़े हुए एवं परस्पर दर्शन न करने वाले प्रिया एवं प्रेयसी का पुनः मिलन एवं आनंद की अधिकता प्राप्त करना समृद्धिमान् संयोग है (जैसे कुरुक्षेत्र मिलन प्रसंग)।

गौण सम्भोग -

जल्प स्पर्श, वर्त्मरोध, वनविहार वशीचोरी, पाशा क्रीड़ा, वधूवेश धृति आदि

प्रेम वैचित्य -

प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्ष स्वभावत:

या विश्लेषधिया आर्ति: तत् प्रेम वैचित्यम् उच्यते ॥

–(उ.नी.म.वियोग 134)

श्री युगल अति निकट विराजमान हो; मिलन प्राप्त हो; फिर भी प्रेमोत्कर्ष का कुछ ऐसा स्वभाव है कि –हम वियुक्त हैं, इस विचार से जब वे व्याकुल हो जाए इसे 'प्रेम वैचित्य' कहते हैं (जैसे- महिषी गीत)।

रत्याभास

किन्तु बाल चमत्कार कारी तत् चिह्न वीक्षया

अभिज्ञेन सुबोधोऽयं रत्याभास: प्रकीर्तित: ॥

–(भ. र. सि. पूर्व 13.1.44)

(जो भाव भक्ति जैसे चिह्नों को देखकर बालकों को चमत्कृत कर दे, परंतु अभिज्ञजन उसकी असारता को जान ले, वह रत्याभास है।)

रत्याभास के भेद

1.प्रतिबिंब

अश्रमाभीष्ट निर्वाही रतिलक्षण लक्षित:

भोगापवर्ग सौख्यांश व्यंजक: प्रतिबिम्बक:

–(वही 3146)

(जो बिना श्रम के ही भोग एवं मोक्ष को सुख के अंश को व्यंजित कर अभीष्ट का कुछ निर्वाह कर दे तथा जिसमें अश्रु रोमांच आदि कुछ सात्त्विक उदय हों तथा क्षान्ति अव्यर्थकालत्व आदि के कुछ लक्षण प्रकट हो, वह 'प्रतिबिंब' नामक रत्याभास है। जो शुद्ध चित्त ज्ञानी जनों में भी दिखता है। (यहां संत हृदय बिम्ब एवं अज्ञ हृदय दर्पण स्थानीय है।)

2–छाया

क्षुद्र कौतुहलमयी चंचला दुःखहारिणी
रतेः छाया भवेत् किंचित् तत् सादृश्यावलम्बिनी ॥

–(वही 3149)

(सामान्य लौकिक काव्य रसिकों को पारमार्थिक हरिकथा एवं लीला-मंचन का दर्शन कर लौकिक बुद्धि से चमत्कार का अनुभव होता है। लौकिक कौतुक के कारण यह भाव प्रतिबिम्ब की तरह स्थिर नहीं होता है। एवं वस्तु शक्ति से भक्त्याभास द्वारा भी दुःख दूर करने में समर्थ रस सामग्री की प्रतीति 'छाया' नामक रत्याभास है।)

प्रकीर्ण

धर्म के चार पक्ष

त्रिगुण एवं वर्ण/ आश्रम

अर्थवाद/किम् /यथा/ क आदि के अर्थ

संत /ऋषि /मुनि/ बाबा/ साधु

गुरु

आचार्य

विधि

मंत्र सिद्धि

10 नाम अपराध

संगीत शास्त्र

आश्रमों के भेद

परिणाम/ विवर्तवाद

श्राद्ध भेद

नैमित्तिक श्राद्ध

धर्म –परिभाषाऐ–

यतोभ्युदय निश्रेयस् सिद्धिः

– वैशेषिक सूत्र

जिससे तत्त्वज्ञान (अभ्युदय) एवं मोक्ष (या स्थायी सुख = निश्रेयस्) की प्राप्ति हो - (शंकर मिश्र)। मोक्ष प्राप्ति की विद्या "धर्म" कहलाती है।

जागृत एवं स्वप्नः– सुख-दुःख मोह रूप होने से निश्रेयस रूप नहीं है। सुषुप्ति एवं प्रलयः–में क्लेश कर्म विपाक आश्रय के बीज उच्छून अवस्था में बने रहते हैं, अतः वे दोनों भी पुरुषार्थ साधन के क्षेत्र नहीं हैं। द्वंदातीत स्थिति (निरुपाधिस्थिति) ही मोक्ष (निश्रेयस्) है।

मोक्ष में जो उपयोगी था उसी का वेदों ने वर्णन किया("वेद प्रणिहितो धर्मः" - भाग 6/1/40/)

धर्म का गौण फल अर्थ एवं काम है। मुख्य फल मोक्ष है।

चोदना लक्षणो धर्मः –जैमनी सूत्र

वेद प्रवर्तको विधिः चोदना। स धर्मः। प्रतिषिद्ध साध्यः अधर्मः। चोदना भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टं आदिकं अर्थं अवगमयितुं शक्नोति (गुरूमत)। भट्टमते चोदना प्रेरणा फल भावना।

('चोदना' का अर्थ वेद प्रवर्तित विधि है। अर्थात् ऐसा करने से यह लाभ होगा एवं न करने पर यह दण्ड मिलेगा। वेदों ने जिसका निषेध किया है वे अधर्म हैं। इत्यादि.

* धार्यते इतिधर्मः (जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधकों द्वारा जिसे धारण किया जाय (अभ्युदयार्थ) उसे धर्म कहते हैं।

* धारयति इतिधर्मः।

1= धर्म अपने नैसर्गिक गुणों से हमें एवं हमारी साधन पद्धति को धारण करने में सहायक होता है।

2= धर्म में धारण करने का नैसर्गिक गुण है - जैसे जल में शैत्य पावनत्व।अग्नि में दाहकता और प्रकाश है।

साधारण धर्म–ये हैं–श्राद्ध कर्म, तपश्चैव सत्यमक्रोध एव च।

स्वेषु दारेषु संतोषः शौचं विद्याऽनसूयता।
आत्मज्ञानं तितिक्षा च धर्मः साधारणो नृप॥

–महाभारत

धर्म की पत्नियां - श्रद्धा मैत्री दया शान्ति तुष्टि पुष्टिः क्रियोन्नति • बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्री मूर्तिः धर्मस्य पत्नयः ॥-(भाग. 4.1.49)

धर्म के चार पक्ष –

1–दर्शन (दृश्यते अनेन)- जिसके द्वारा तत्त्व मीमांसा लक्षण एवं साधन का दर्शन किया जाए। यह philos (अनुराग) एवं sophia (ज्ञान) = 'ज्ञान के प्रति प्रेम' (philosophy) से दर्शन भिन्न है। दर्शन में निश्चय ज्ञान की प्रमाणिकता है जबकि फिलासोफी में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति दोनों में संदेह व्याप्त रहता है।

दर्शन –अधिकारी, संबंध (उपास्य का स्वरूप), अभिधेय (साधन) एवं प्रयोजन (लक्ष्य) इन अनुबंध चतुष्टय का निर्णय करता है।

2.कर्मकांड –पूजन पद्धति, संस्कार, विधि-निषेध, प्रायश्चित्त विधि एवं (जीवन-पद्धति/ सामाजिक संरचना) आदि पर केंद्रित होता है।

3.उपासना –

उपासनं तु यथाशास्त्र समापितं किंचित् आलम्बं उपादाय

तस्मिन् समान- चित्तवृति- संतान करणम्। तद् विलक्षण प्रत्यय आंतरितम्॥–(छान्दोग्य उप. की भूमिका शंकराचार्य)

(अर्थात्- शास्त्रानुमोदित किसी उपास्य आलम्बन को ग्रहण कर उसमें निष्काम चित्तवृति की परंपरा को लगाना;एवं उपास्य से अतिरिक्त ध्येयों से चित्त को अलग कर लेना "उपासना" कहलाती है। उपासना के तीन तत्त्व है –

i) शास्त्रानुमोदित एक विषय का चयन

ii) तैलधारावत् चित्तवृत्ति की एकतानता

iii) विजातीय प्रत्यय का अभाव

iv) सदाचार

इसका आदर्श रूप वर्णाश्रम व्यवस्था है। वर्ण व्यवस्था मूलतः 'कर्म सिद्धांत' पर

आधारित है। क्योंकि जन्म भी तो कर्म के अनुसार मिलता है। परंतु व्यवहार में अव्यवस्था की सम्भावना देखकर वर्ण व्यवस्था को जन्मानुसार मान्यता दी जाती है।

वर्णव्यवस्था

यद्यपि फल भोग में सभी का समान अधिकार है। परंतु भगवत् सेवा-संविधान में देश -काल- पात्र की दृष्टि से परिसंख्या (मर्य्यादा) का सभी के लिए अनिवार्य विधान है।

ब्राह्मण में –सत्त्व रज तम का क्रमशः प्राधान्य है।

क्षत्रिय में –रज < सत्त्व < तम का क्रमशः प्राधान्य है।

वैश्य में –रज < तम< सत्त्व का क्रमशः प्राधान्य है।

शूद्र में– तम < रज < सत्त्व का क्रमशः प्राधान्य है।

ऐसी ही व्यवस्था नारी धर्म / अन्त्यज धर्मो की है।

आश्रम-

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास क्रमशः

व्यक्ति -आत्मोन्नति के सोपान हैं।(देखो श्री मद् भागवत ११ से १५ अध्याय)

यज्ञ -अध्ययन- दान प्राथमिक सभी के धर्म है

भक्ति -जैव धर्म (जीव का धर्म है)केवल देह धर्म नहीं

अर्थवादः

अन्यथा स्थितो अर्थः संगोपयितुं अन्यथा कृत्वा उच्यते स अर्थवाद।

(यथा कर्म त्यागार्थे कर्म फल प्ररोचनां)

(किसी उद्देश्य को लेकर जो व्यवस्था दी गयी उसे बढ़ा-चढ़ा कर अन्यत्र भी प्रयोग करना अर्थवाद है।)

पौरुषेय वाक्यों के अर्थ का निर्धारण वक्ता के तात्पर्य से होता है। जबकि अपौरुषेय वाक्यों के अर्थ का निर्धारण पूर्वापर क्रम से होता है।–(श्री धरी टीका 11.3.44)

यथा- के 4 अर्थ

योग्यता -वीप्सा -पदार्थ अन्तिवृत्ति सादृश्याः यथार्था

किं- के छः अर्थ

प्रश्न -आक्षेप -कुत्सायां, वितर्क- आभास- गोचरे।

'क' (प्रत्यय) का अर्थ

अज्ञात कुत्सिते चैव संज्ञायां अनुकम्पेन

तद्युक्तनीतौ अल्पे च ह्स्ववाच तु "क" स्मृतः ॥

(तद्युक्तौ = शास्त्र एवं नीति के युक्त)

नागर = रसवर्धक उपायों में विदग्ध

रंग = रागो, नृत्ये, रणे, रागे

गो = दिक्, दृष्टि, दीधिति, स्वर्ग, सूर्य, वाक्, वाण, वारिषु।

भूमौ, पशौ च गोशब्दः विद्वद्भि दशधा मतः ॥

गोपी

1.इन्द्रियैः कृष्णाय माधुर्यं पाययति।

2.इन्द्रियैः कृष्णस्य माधुर्यं पिवति।

3.सरस्वत्या (वाण्या) पालयति कृष्णं/ स्वं वा।

4.रसभूमिं / रसं / गोलोकं पालयति।

5.किरणैः (कान्त्या) श्री कृष्ण पालयति।

गोविन्दः (गावः / इंद्रियाणि/ वाणी/ दिशः रक्षकत्वेन विन्दति)

देवः = क्रीड़ा/ विजगीषा (विजय)/द्युति/ स्तुति/ गति/ दान द्योतन/ दीपन कर्ता

नमः =अनन्य साधन/ रक्षक / आश्रय / शेष इन सभी अर्थों में देव शब्द का प्रयोग होता है।

विशेषण

जो अन्य-व्यावर्तक एवं विशेष्य का प्रकाशक हो उसे विशेषण कहते हैं।

'स्व बुद्धया रज्यते येन विशेष्यं तद् वशेषणम्'॥

–(श्रीधरी 10.87.2)

(निज का बोध कराकर जो विशेष्य को प्रकट कर दे)

अधिकरण के तीन रूप

औपश्लेषिक – "कटे आस्ते" (आधार वस्तु)

वैषयिक – "मोक्षे इच्छति" (अभिप्सित वस्तु)

अभिव्यापक – "सर्वस्मिन् ब्रह्म"(व्याप्त वस्तु)

सन्तः सन+त

जिसके दोनों हाथ जुड़े हुए हो, जो लक्ष्य के साथ सन्नद्ध (जुड़ा हुआ) हो।

ऋषि = द्दष्टा (ऋषयो मंत्र द्दष्टारः)

मुनि = मननशील / मुनि का शील मौन है।

बाबा = वाति इति बाबा (वा स्वादि= हवा का चलना)

वाक्यति = प्रहारं करोति (अज्ञाने षड्उर्मिषु)

सुख-दुःख, शीतोष्ण, क्षुत्, पिपासा पर प्रहार करने वाला इंद्रियजयी व्यक्ति

साधु

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मां अनन्यभाक्

साधुरेव स मंतव्य:

–(गीता- 9.30)

सात्वत

सात् (विष्णु) + मतुप् (मत् का वत् आदेश)

धाम

देह, गेह, रश्मि, प्रभाव, स्थान जन्म (विश्वकोश)

रहस्यं

अदेय, गोपनीय देय, सार, विरल प्रचार

साक्षात्कार

"भावना विना अनुभव"

पुण्यश्लोक

जगज्जन-मलध्वंसि श्रवण स्मृति कीर्तना:
मलमूत्रादि रहिता: पुण्यश्लोका: इति स्मृता: ॥
अनागतं अतीतं च वर्तमानं अतिन्द्रियं
विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यति योगिन: ॥

–(भाग.10.61.21)

परिभाषा

"**अनियमे नियम कारिणी परिभाषा**"

जैसे - "**कृष्णस्तु भगवान् स्वयं**" एक परिभाषा वाक्य है।

(जो वाक्य सम्पूर्ण शास्त्र को नियमित करे, उसे परिभाषा वाक्य कहते हैं)

संशय- वैपरीत्य- असंभवना रहितं असाधारण वचनं परिभाषा

विरुद्ध- वाक्यानां प्राकरणिकत्वेन् दुर्बलत्वात्।

गुरु

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्ति भेद विभागिने

व्योमवत् व्याप्त देहाय दक्षिणामूर्त देवम्॥

(कृपामय गुरु तत्व- 1. ईश्वर 2. गुरु 3. आत्मा तीन रूपों में प्रकट हैं। वे आकाश की तरह सर्वत्र व्याप्त हैं। उन्हें प्रणाम है।

परिपक्वान् मलान् ये तान् उत्सादन हेतु शक्तिपातेन

योजयति परतत्त्वे स दीक्षया आचार्य मुर्तिः परमेश्वरः।

–(पंचदशी की रामकृष्ण टीका)

श्री गुरुदेव शिष्य के मल का परिपाक कर, उसे दूर करने के लिए शक्तिपात कर, परतत्त्व से जोड़ते हैं। ऐसे गुरु को परमेश्वर समझो।

आचार्य

आचिनोति हि शस्त्राणि स्वाचारे स्थापयत्यपि

आचारयति यो लोकं तमाचार्यं प्रचक्षते।

(जो शास्त्रों के निर्णय को चुने तथा स्वयं को शास्त्रों में स्थापित करे। जो लोक को शास्त्र निर्णय में लगाए उसे आचार्य कहते हैं)

मंत्र व्याख्या कृदाचार्यः।

ईश्वर में प्रमेयबल है;आचार्य में प्रमाण बल है।

अचार्य के गुण

1.आचरण 2. प्रमाण बल 3. कृपा करने की सामर्थ्य

विधि:

अप्राप्त प्रापक: विधि:

स्वभावत: प्राप्त न हो फिर भी शास्त्र द्वारा उसका विधान हो, उसे 'विधि' कहते हैं। जैसे- "अहरह: संध्यामुपासीत"

गुरु की अनिवार्यता

निरालम्बो यथा लोके स्थानमृष्ट: निगद्यते

हरे: कृपा विशिष्टोऽपि गुरुहीन: तथैव च।

(जैसे निराधार वस्तु को स्थान भृष्ट कहा जाता है, वैसे ही कोई भले ही श्री हरि की कृपा से युक्त हो गुरु हीन व्यक्ति स्थानभृष्ट ही होता है।)

•गुरु कृष्ण कृपा मूर्ति है

विद्रावितो मोह महान्धकार: यै: आश्रित: मे तव सन्निधानात्

विभावसो: किं नु समीपगस्य शीतं तमो भी: प्रभवन्ति अजाद्य: ॥

–(उद्धव श्रीकृष्णम् 11.29.3)

[हे अज ! जो मोह अंधकार मुझ में बसा हुआ था, वह आपके (गुरु के) निकट आने पर दूर हो चुका है। सूर्य (अग्नि) के निकट आने पर क्या शीत (जड़ता) तम (अज्ञान) एवं भी: (संसार भय) अब भी रह सकता है?]

तद् विज्ञानार्थ स गुरुम् अभिगच्छेत् समित् पाणि: श्रोत्रियं ब्रह्म निष्ठम्

–(मुण्डक उपनिषद्)

•गुरु: यह भगवान् का ही नाम है- " गुरु: गुरुतमो धाम: सत्य: सत्य पराक्रम: -"विष्णु सहस्त्रनाम।

यस्य साक्षात् भगवति ज्ञान दीप प्रदे गुरौ

मर्त्याऽसत् धी: श्रुतं तस्य सर्वं कुंजऽशौचवत् ॥

–(नारद: युधिष्ठिरम् 7.15.26)

(गुरु साक्षात् भगवान् है। उनमें जिसकी मनुष्य बुद्धि है उसके सम्पूर्ण ज्ञान- कर्म -साधन हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है।)

आचार्यं मां विजानीयात् नावमन्येत् कर्हिचित्

न मर्त्य बुद्धयासूयेत् सर्व देव मयो गुरुः॥

–(भाग.-11.17.27)

•भगवत् कृपा का फल गुरु कृपा प्राप्ति है।

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेत् जनस्य यहि अच्युत सत् समागमः

समागमो यर्हि तदेव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते रतिः॥

–(मुचुकुंदः कृष्णम् 10.51.54)

(हे अच्युत्! जब आप किसी के संसार की निवृत्ति करना चाहते हैं, तब उसे संत से मिला देते हैं। एवं तब तुरंत ही परमगति आप में रति उत्पन्न हो जाती है।)

मंत्रसिद्धि

मंत्रदेवता आत्मा मनः प्राणानां ऐक्यस्फालनात् मंत्र सिद्धि॥

–(पातं . योग सूत्र)

(अर्थात् मंत्र, मंत्र का देवता, जीवात्मा, मन एवं प्राणों का एक विषय में एकाग्र होने से मंत्र सिद्धि होती है)। मंत्र सिद्धि के लिए निम्न चार वस्तुओं की आवश्यकता होती है–

1. व्रत = ब्रह्मचर्य, सत्याचरण, सत्वशुद्धि
2. पूजन = गुरु देवता अग्नि एवं मंत्र का पूजन
3. निच्छलता = गुरु मंत्र एवं देवता में विश्वास
4. दीक्षा विधि

"धृतव्रतेन, हिमया, छन्दांसि गुरवोग्रयः

मानिता, निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम्॥

–(श्री व्यास देवः- भाग 1.4.20)

गुरु के भेद

1.चैत्य (अंतर्यामी गुरु)

नैवोपयात्यपचितिं कवयः तवेश !ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुतः स्मरन्तः

योन्तः बहिः तनुभृतां अशुभं विधुन्वम् आचार्य चैत्य वपुषा स्वगतिं व्यनंक्ति ॥

–(उद्धव कृष्णं 11.29.6)

हे ईश ! आपके उपकार का बदला ब्रह्मा की आयु पाकर भी कविजन भी नहीं कर सकते हैं। क्योंकि उपकार सदा बढ़ रहे हैं। आप अंतर्यामी एवं आचार्य रूप में जीवों के अशुभों को दुर करते हुए चैत्य एवं आचार्य इन दो रूपों में अपने स्वरुप को प्रकट करते हो।

2.श्रवण गुरु

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहं

धुनोति शमलं कृष्णः सालिलस्य यथा शरत् ॥

–(भाग. 2.8.5)

(श्री कृष्ण कर्णरंध्र के द्वारा निज जनों के हृदय में प्रवेश कर सारे मल को उसी प्रकार दूर कर देते हैं, जैसे शरद् ऋतु में सरोवर स्वतः शुद्ध हो जाते हैं।)

3.शिक्षा गुरु

तस्मात् गुरु प्रपद्येत जिज्ञासु श्रेय उत्तमम्

शाब्दे परे च निष्णातम् ब्रह्मणि उपश्याश्रयम् ॥

–(प्रबुद्धः निमिम्-11.3.21)

[उत्तम श्रेय की जिज्ञासा रखने वाले को गुरु की शरणागति लेनी चाहिए। गुरु शब्दब्रह्म एवं परब्रह्म में निष्णात होना चाहिए एवं उसने श्री कृष्ण (ब्रह्म) को सब छोड़कर आश्रय स्वीकारा हो।]

4.दीक्षा गुरु

दीव्यत् ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम्

तस्मात् दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैः तत्त्व वेदिभिः ॥

– (तंत्र)

जिस संस्कार से दिव्य ज्ञान दिए जाएं, जो विधि पाप का क्षय करे उसे तत्त्ववेत्ता आचार्य (देशिक) लोग 'दीक्षा' कहते हैं।

तापः पुंड्र तथा नाम मंत्रो योगश्च पंचम

अमी स्युः पंच संस्काराः परमैकान्तहेतवः ॥

–(पद्मपुराण)

•रहस्य = मंत्र (गोपनीय, दुर्लभ, निधि)

5.सद्गुरु

यथा सिद्धरसस्पर्शात् ताम्रं भवति कांचन

सन्निधानात् गुरोः एव शिष्यः विष्णुमयो भवेत् ॥

–(आगम)

(जैसे सिद्ध रस के स्पर्श से तांबा सोना बन जाता है, उसी प्रकार गुरु के निकट स्पर्श से शिष्य विष्णुमय हो जाता है।)

दीक्षा के प्रकार

1. पक्ष दीक्षा = पक्षी के तरह आवरण पूर्वक कान में मंत्रोपदेश देना।
2. मत्स्य दीक्षा = मछली की तरह बालक पर दृष्टि से कृपा करना।
3. कमठ दीक्षा = कछुवी की तरह अंडों को द्वार से (मन से)संरक्षण करना।

स्वरूप दीक्षा

सिद्ध स्वरूप का निश्चय कराना एकादश भाव निम्न हैं–

नाम, रूप, वयो, वेश, संबंधो, यूथ एव च

आज्ञा सेवा पराकाष्ठा पाल्य दासी निवासकः ॥

दस नामापराध –

1.सतां निंदा नाम्न: परममपराधं वितनुते

यत: ख्याति यात: कथमु महते तद् विगरितुम् ॥

2.शिवस्य श्री विष्णो: य इह गुण- नामादि सकलं

धिया भिन्नं पश्येत् स खलु हरि नामाऽहितकर: ॥

3.गुरो: अवज्ञा

4.श्रुतिशास्त्रनिन्दनम्

5.तथार्थवाद: हरिनाम्नि कल्पनम्

6.नाम्नोबलात् यस्य हि पाप बुद्धि:

न विद्यते तस्य यमै: हि शुद्धि ॥

7.धर्म- व्रत -त्याग -हुतादि- सर्व

शुभ क्रिया साम्यम् अपि प्रमाद: ॥

8.अश्रद्दधाने विमुखे अश्रृण्वति

यश्च उपदेश: शिवनामापराध: ॥

9.श्रुतेऽपि नाम माहात्म्ये य: प्रीतिरहितोऽधम:

10.अहं ममादि परम: नाम्नि सोऽप्यपराध कृत ॥

–(हरि भक्त विलास–11.182.186 में उद्धृत पद्मपुराण वचन)

संगीत = गायन वादन नृत्य का सम्मिलित रूप "तौर्यत्रिक" है

श्रुतियां-२२ हैं

(स) षडज = ४ श्रुति, मयूर

(रे) ऋषभ = ३ श्रुति, चातक

(ग) गंधार= २ श्रुति, छाग

(म) मध्यम = ४ श्रुति, क्रोंच

(प) पंचम = ४ श्रुति, कोकिल

(ध) धैवत = ३ श्रुति, दर्दुर

(नि) निषाद = २ श्रुति मातंग

ग्राम = षडज, मध्यम, पंचम

जातियां -संपूर्ण–आरोह में ७ स्वर

षडज–आरोह में ६ स्वर

औडव–आरोह में ५ स्वर

जातयो राग मातरः

षड्जर्षभौ च गांधार मध्यमः पंचमः तथा

धैवतश्च निषादश्च सर्वेस्युः श्रुति सम्मताः ॥

मयूर (स), चातक (रे), छाग (ग, क्रौंच(म), कोकिल (प), मातंग (नि), क्रमे स्वरा सुदुर्लभा ॥

स्वरों को बोलते हैं।

आश्रम भेद

ब्रह्मचारी- १) 'साविल्य (उपनयन के बाद तीन दिन का व्रत),

२)प्राजापत्य (एक वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत)

३) ब्राह्म (वेदाध्ययन की समाप्ति तक)

४)बृहत् (आजीवन)

गृहस्थ - वृत्तिया-

१)वार्ता (कृषिआदि)

२)संचय (यागादि)

३) शालीन (अयाचित)

४)शिलोञ्छ (रास्ते में अथवा मंडी में गिरे दानों से निर्वाह)

वानप्रस्थ

१)वैखानस (विना बोयी भूमि से उत्पन्नपदार्थ)

२)बालखिल्य (नवीन अन्न आने पर पूर्व संचित का त्याग)

३)औदुम्बर (प्रातःकाल किसी एक दिशा की ओर मुखकर वहां से प्राप्त फलादि ग्रहण करना)

४) फेनप (अपने आप झड़े हुए फलों आदि से निर्वाह)

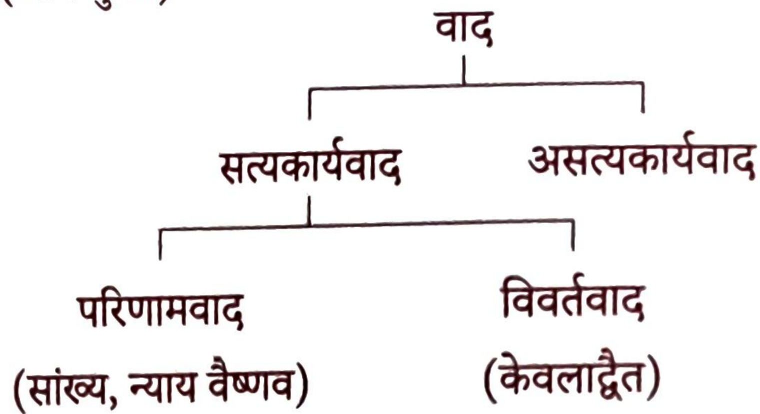
सन्यास

१) कुटीचर (कुटी बनाकर रहना)

२) बहूदक (ज्ञान को मुख्य साधन मानना)

३) हंस (ज्ञानाम्यासी)

४) परमहंस (जीवन्मुक्त)



कार्य = वस्तुनः अन्यथा भावः। स द्विविधा

१)विवर्त- वस्तुन: स्वरूप अपरित्यागेन स्वरूपान्तरेण मिथ्या प्रतीतिः (वस्तुनि अवस्त्वारोप: अध्यारोप:)

२)परिणाम- वस्तुनः यथार्थतः स्वरूप परित्याज्य रूपान्तरापति

सतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विकार इत्युदाहृतः

अतत्त्यतोऽन्यथा प्रथा विवर्त इत्युदीर्यते

-वेदान्तसार -(सदानंद) 5

-देखो सर्व संवादिनी (भगवत् संदर्भ प्र. 6)

वस्तु का तत्त्वतः अन्यरूप धारण कर प्रकट हो विकार है (जैसे दूध का दही बनना 'विकार' है) वस्तु स्वयं विकृत न हो एवं अन्य रुप में दिखने लगे जैसे सीपी में चांदी की भ्रान्ति हो जाना विवर्त है।

श्राद्ध भेद

एकोद्दिष्ट = एक पुरुष को लक्ष्य कर किया गया श्राद्ध

पार्वण = तीन पुरुषों के उद्देश से किया गया श्राद्ध

12 श्राद्ध

१)नित्य- प्रतिदिन जल दूध से किया जाने वाला श्राद्ध

२) नैमित्तिक- जिसका समय निश्चित हो ऐसे १६ प्रेतश्राद्ध

३)काम्य - स्वर्ग एवं संतान प्राप्ति के लिए (रोहिणी एवं कृत्तिका नक्षत्रों के श्राद्ध)

४)वृद्धि - पुत्रोत्पत्ति, विवाह शुभ घटना पर किए गए श्राद्ध

५))सपिण्डीकरण- 16 प्रेत श्राद्धों के बाद होने वाला श्राद्ध

६)पार्वण- अमावस्या आदि पर किया जाने वाला त्रिपुरुष श्राद्ध

७)गोष्ठी- कई व्यक्तियों के द्वारा मिलकर एक साथ किया गया श्राद्ध

८)शुद्धि- पाप/अपराध निवृत्ति के लिए किया श्राद्ध

९)कर्मांग- गर्भाधान, सीमन्त पुंसवन आदि कर्मों के अंगभूत श्राद्ध

१०)दैविक - देवता को प्रसन्न करने के लिए किया गया श्राद्ध

११)यात्रा - दूरयात्रा के पूर्व ब्राह्मण को घृत दान। एवं लौटने पर पुनः श्राद्ध सम्पादन

१२) पुष्टि - स्वास्थ्य या धन वृद्धि के लिए किया गया श्राद्ध

नैमित्तिक षोडश श्राद्ध

(उदाहरणार्थ मृत्यु तिथि चैत्र कृष्ण द्वितीया)

१)प्रथम पाक्षिक- (एकादशाह के दिन) चैत्र.कृ.१२

२)ऊनमासिक (एक माह से एक दिन पूर्व) वै.कृ.१

३)द्विपाक्षिक (एक माह की तिथि)वै.कृ.२

४)त्रिपाक्षिक (डेढयास की तिथि)वै.शु.२

५)त्रिमासिक (दूसरे माह की तिथि)जे.कृ.२

६)चतुर्थमासिक (तीसरी माह की तिथि) आ.कृ.२

७)पंचम मासिक (चौथे माह की तिथि) श्रा.कृ.२

८)षष्ठमासिक (पांचवें माह की तिथि) भाद्र.कृ.२

९)उनषाड् मासिक (छठे मास से एक दिन पहले) आश्विन कृ.१(छमाही)

१०)सप्तम मासिक (छठे मास की तिथि) आ.कृ.२

११)अष्टम मासिक (सातवे मास की तिथि) का.कृ.२

१२)नवम मासिक (आठवे मास की तिथि) मार्ग.कृ.२

१३) दशम मासिक (नौवे मास की तिथि) पौ.कृ.२

१४)एकादश मासिक (दशम मास की तिथि) भा.कृ.२

१५)द्वादश मासिक (ग्यारहवे मास की तिथि) फा.कृ.२

१६)ऊनाद्विक (१२ वे माह के एकदिन पूर्व) चै. कृ. १ (वरसी)

•अधिकमास (माह एवं पक्ष की तिथि) अधिक कृ.२

क्षया - (प्रथमवर्ष का मृत्यु दिन)-कृताकृत

नियम- "मासादौ मासिकं कुर्यात् मासान्ते ऊनमासिकम्" -मिताक्षरा

पूर्वाभास

प्रस्तुत संग्रह कोई शब्दकोश या dictionary नहीं। यह उन पारिभाषिक शब्दों का संकलन है। जो भागवत (वैदिक) पथ के पथिकों एवं भक्ति मार्ग के साधकों के सन्मुख शास्त्र चिंतन के समय प्रायः जाने अनजाने उपस्थित हो जाते हैं। और उनका सटीक अर्थ न जानने पर अनेक बार भ्रम की स्थिति भी उपस्थित हो जाती है।

"समाम्नाय" एक निश्चित विचार वर्ग के उपयोगी एवं पारिभाषिक शब्दों का संकलन है। जिससे उस ज्ञान विशेष का सम्यक् एवं प्रामाणिक अभ्यास किया जा सके। शब्दों के शास्त्र विशेष की सीमा में ग्राह्य अर्थों को प्रामाणिकता के साथ समझा जा सके। पूर्व में ऐसा प्रयास 'निघण्टु' (वैदिक शब्दकोश) के रूप में किया गया था। जिसका व्याख्यान 'निरुक्त' श्रेणी की रचना द्वारा महर्षि यास्क ने किया था। 'निरुक्त' को षडंग वेद का एक अंग (वेद पुरुष का श्रोत्र) कहा गया। वाङ्ला में 'गोडीय अभिधान कोश' जैसे कुछ प्रयास हुए। परन्तु वे 'कैट लोग' श्रेणी में प्रमुख रहे। अथवा विचारों एवं सूचनाओं को संप्रेषित करने के मूल उद्देश्य से भटक कर विवादों की कुज्झटिकाओं में उलझ गए। कई बार तो नए अखाड़े खुद गए। समाम्नाय में दिए गए अर्थ परिभाषाएं भेद एवं लक्षण शास्त्रीय हैं। उनको प्रमाणों एवं संदर्भों के साथ यथा साध्य प्रस्तुत किया गया है। एवं बहुत विस्तार एवं उपभेदों एवं शास्त्रार्थों से बचा गया है।

आम्नाय का अर्थ ही है सत्य वचन ("आम्नाय वचनं सत्यम्") "मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता" की नीति एवं शैली यहां अपनायी गयी है।

इस संकलन में क्रमशः प्रमाण अध्याय में 'प्रमाण' से संबंधित कुछ सर्वोपयोगी परिभाषाएं हैं। यहां तत्त्वों को पांच भागों में विचार किया गया है -ब्रह्म, जीव, माया (जगत्), काल एवं कर्म। इनमें वैष्णव विचारधारा ही मुख्यतः संकलित है। केवला द्वैत विचारधारा तुलना एवं पृष्ठभूमि में उपयोगी रही है। उपास्य के रूप में ब्रह्म (भगवान्) ही स्थापित हुए हैं, जीव जगत् नहीं। भगवत्तत्व के संग्रह में

भगवत् स्वरूप की चिन्मयता एवं अवतारों के भेदों का निरूपण है। श्री कृष्ण तत्त्व का पृथक् अध्याय है। जहां उनकी शक्ति माधुर्य का विवरण है।

साधन प्रकरण में- धर्मशास्त्र, कर्म योग, ज्ञान, मोक्ष, भक्ति अंत:करण, जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं ख्याति का विवरण है। भक्ति का पृथक् से चित्रण है, जिसमें उसके भेद सोपान एवं प्रमुखतः रागानुगा भक्ति के अंगों का संकलन है। रसोपासना के विभिन्न सोपान एवं रसशास्त्र के घटकों का संक्षिप्त विवरण पाठकों के बहुत हित का होगा– ऐसी आशा है,। प्रकीर्ण में अन्य संबंधित उपयोगी विषयों का संकलन है।

यह मेरा गत 50 वर्षों का संकलन है जिसे छोटे छोटे पुर्जों में बिखरे हुए स्थानों से संकलित किया गया है। प्रायः विभिन्न सेमीनार या विद्वत् गोष्ठियों के लिए अथवा श्रीमद्भागवत् के प्रवचनों में इन, टिप्पणियों का प्रयोग होता रहा था। आशा है, यह संकलन शोधार्थियों एवं प्रवचन कर्ताओं को 'परिपाक' रूप में सुलभ हो जाएगा। प्रमुखतः परंम्परा से हम इस सामग्री का उपयोग करते रहे हैं। एवं इसके सुपरिणाम प्राप्त हुए है। क्योंकि यह सप्रमाण सामग्री है।

सुविधा एवं सार्वजनीनता की दृष्टि से प्रायः सर्वत्र संस्कृत मूल वचनों के हिन्दी अनुवाद भी दिए गए हैं।

शब्दकोश

श

स

श्र

॥ श्रीराधामदनमोहनौ जयतः ॥

जयतां सुरतौ पङ्गोर्मम मन्द-मतेर्गती ।
मत्सर्वस्व-पदाम्भोजौ राधा-मदन-मोहनौ ॥

Created by GK PRINT PACK EXHIBITION LLP
91633 36988

